प्रेम-प्रशंसा

अर्थात

गृहस्थ-दशा-दर्पण

नाटक ।

लेखक

पाण्डेय लोचन प्रसाद

प्रकाशक

हरिदास एण्ड कम्पनी

कलकत्ता

२०१ हरिसन रोड के "नरसिंह प्रेस" में

बाबू रामप्रताप भार्गव

द्वारा मुद्रित ।

1906

DEDICATION

MOST AFFECTIONATELY

DEDICATED TO

Rai Sahib P. Kripa Ram Mishra

DEWAN

OF

Raigarh Feudatory State

RAIGARH C. P.

By

THE HUMBLE

AUTHOR.

भूमिका।
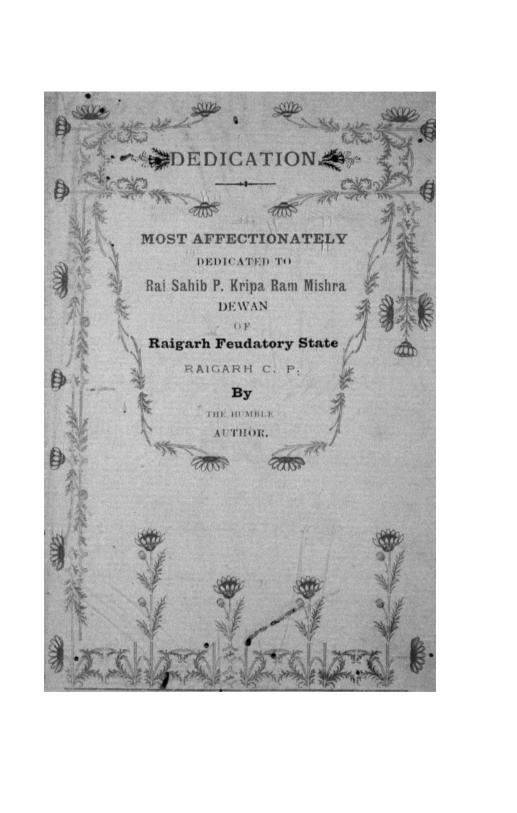
इस छोटे से 'नाटक' में सामयिक सम्मिलित हिन्दू-कुटुम्ब की स्थिति का पूरा पूरा चित्र चित्रित करने का उद्योग किया गया है। न जाने कहाँ तक इसमें सफलता प्राप्त हुई है।

भाई २ में विरोध उत्पन्न कराने को स्त्रियाँ कैसी चतुराई के साथ कुटिलाई करती हैं। कलहसे घर में कैसी अशान्तता फैली रहती है। घर के सयाने को आपस की लड़ाई से कितना कष्ट नहीं मिलता? अपकारी लोग दम्पति में मनोमालिन्य जान कर, उन्हें सन्तप्त गात करनेको कैसी २ करामात कर डालते हैं। पुरुष, स्त्रियों की बातों पर कान दे, घर मकान का ध्यान छोड़, योगी होने को चित्त ठान लेते हैं। परोपकारी लोग दूसरे के सुख से सुखी और दुःख से दुखी होकर उनके परिवार का उपकार करने में स्वलाभ तक भी संहार करते हैं।

प्रेम का उदय जिनके हृदय में हो जाता है वह निश्चय अजय और अभय होता है। प्रेमी को लाखों भय दिखलाओ, लाखों कुटिलता सिखलाओ, किसी प्रकार दुःख और कष्ट पहुँचाओ और उन्हें विलग भी करवाओ पर प्रेम दिन २ दूना होता जाता है :—

"True love no time nor distance destroy,
And independent of all present joy,
It grows in absence." इसी हेतु इसका नाम 'प्रेम प्रशंसा' भी रखें तो अनुचित नहीं होगा। गृहस्थाश्रम का सुख दुःख, स्त्री जाति की निन्दा और स्तुति, माया मोह से आत्मोन्नतिका नाश और सेवकाईकी बुराई आदि भी दरसाई गई है।

सीधे सादे रहने से कहाँ तक कष्ट मिलता है। आज कल लोगों को अपनी ओर लाने के लिये कपट, छल, वाक्-चातुरी असत्य आदिका कहाँ तक प्रचार है; सङ्गति के कैसे फल होते हैं; सती स्त्रियाँ स्वीय पतिको किस प्रकार सदाचार बना सच्चरित्र कर देतीं हैं, इत्यादि का यथा शक्ति वर्णन किया गया है।

देखें, हमारे प्रिय पाठकों को यह कहाँ तक रुचता है। इत्यलम्

बालपुर
२३—८—०६
रविवार

पाण्डेय लोचन प्रसाद।

नाटक के पात्र।

पुरुष-पात्र

मनमोहन :—नाटक का नायक (हरिनाथ का पुत्र)

हरिनाथ :—एक साधारण गृहस्थ (मनमोहन का पिता)

नरसिंह :—हरिनाथ का पुत्र, मनमोहन का भाई

मदन :—मनमोहन का मित्र

श्यामलाल
गोपाल
बलरामदास } मनमोहन के ज्ञात बन्धु

सुन्दरप्रसाद :—अनुचर

सेवकादि

स्त्री-पात्र

सुशीला :—नाटक की नायिका (मनमोहन की पत्नी)

देवयानी :—मनमोहन की माता (हरिनाथ की स्त्री)

कमला :—(नरसिंहकी स्त्री)

लक्ष्मी :—हरिनाथ की माता (मनमोहन की पिता-मही)

सुलोचना :—हरिनाथ की बहिन।

वृहस्पति जाया :—सुलोचना की सास।
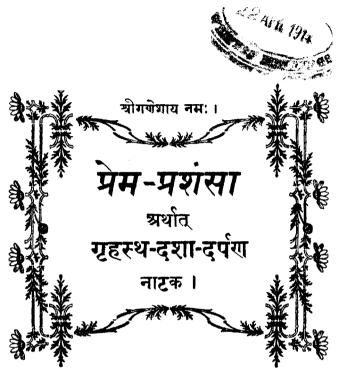
प्रस्तावना ।

मङ्गल पाठ—नान्दीका (भभूत रमाये, जटाजूट बढ़ाये, रक्त चन्दनका त्रिपुण्ड लगाये, योगिया वेष बनाये, मनभाये, पग पग धरते, दर्शकोंका चित्त हरते, हर हर उचरते, प्रभु-गुण गान करते, धीरे धीरे बढ़ता चला आता है। पहले भकचका-सा आता है फिर तँबूरा बजाता है और यह पद गाता है।)

अरे मन शिव शिव शिव शिव कहिये ।
परि क्यों कुटिल कालके गालहिं नर तन वृथा सिरइये ॥
यह जग-जाल-माल उर धरि क्यों दुसह दुक्ख नित सहिये ॥
सुत-वित-मात-भ्रात-बनिता-रस राति, भुलाइ न रहिये ॥
चार दिनाकी यह जिनगानी विनसि जाय का करिये ॥
आठों याम राम शंकर भजि अघ दुख दारिद दहिये ॥
चलि शिवधाम काम तजि औरे जग बदनाम मिटइये ॥
सिद्धि सदन सेवहु वर लेवहु नित्य मगन मन रहिये ॥
शंका शोक रोग भय भागहि चार पदारथ लहिये ॥
लोचन नाम-सुधा-रस पी पी कुटिल काल भय हरिये ॥

नान्दीके पीछे सूत्रधारका प्रवेश ।

सूत्रधार—(साटी धोती पिछोरी, हाथमें रूमाल, भालमें विशाल लाल त्रिपुण्ड्र और गलेमें रुद्राक्षकी माल संयुक्त भोरी भोरी चितवनसे जन-मनको आकर्षण करता, और छोरको देखता, कोर कोरमें दृष्टि फेंकता आता है)

अहा ! कुछ दिन पूर्व कैसे सुरस मन-मोदक खाये थे, इस आकाश-पुष्पकी आशासे चित्तने कैसे अकथनीय सुख पाये थे, इस सुखके परिवर्द्धन हेतु हमने कैसे अच्छे अच्छे विचार बाँध लाये थे, अपनी आत्मोन्नतिके हेतु कहाँ कहाँसे मसाले खोज लाये थे, स्वदेश-सेवाका ध्यान, मान, अपमानका दान और शुद्ध ज्ञान प्राप्त करनेका ध्यान सोचकर अनमने मनको कैसे मनाते थे, हमीं जान सकते हैं———पर हाय

आज तो यह संसार-रङ्गशाला निराली ही दीख रही है। निराशा-समुद्रकी उतङ्ग लहरोंसे मेरा मन इस प्रकार हिल-कोरें खा रहा है कि पार होनेका कुछ द्वार ही दृष्टि नहीं आता। किसीने यह कहा था कि—Let me warn you that the world you are about to enter is, by no means, as smooth and beautiful as the pencil of youth and hope may have painted to your imagination.

In reality it is full of divergences, difficulties, disappointments and dangers.

* * * *

You will find a ceaseless strife going on everywhere in pursuit of food, fortune or fame. सो मुझे निरा असत्य ही जान पड़ा था किन्तु आज तो एक एक वर्ण और मात्रा मात्रा मेरी दुःख-यात्रामें सत्यता पूर्ण दीख पड़ती है।

भयने शान्ति राज्यको जय प्राप्तकर निर्भय रूपसे मेरे हृदय-आशयको भय पूरित कर दिया है। स्वच्छन्दता और निरुद्वन्दताकी सत्ता आज खूँट खोदकर मेरी गोदसे फेंक दी जा रही है।

एकके अनेक होकर टेकधारी भेकके सदृश टें टें करते, नेक भी सुखकी आशा अभिलाषा नहीं तो फिर कहो क्या करूँ? अब तो किसीकी सम्मति लेनी अवश्य ही पड़ी।

तो—अच्छा, चलो 'ईश्वन' होसे पूछूं, कारण ये हमारे चालाक चतुर असुर-कुलके नायक सुर-मित्र बड़े धीर वीर हैं,

(घूमकर) याद करने बाद भी इतनी ❊ ❊ (शीघ्रतासे विदूषक देहघनका प्रवेश) हाँ, सुनो, सारी बात सुनो । यह प्रलाप, शारीरिक ताप और पाप ही का विलाप है । क्या इसे संयम-तापसे आपही आप विषैले साँपके तुल्य आप दूर नहीं फेंक सकते ? यह विचार-व्यापार, असार संसारको सचाई-सार बनानेमें तथा भवसरितासागरके पार पानेमें करवालकी धारके सदृश बड़ाही दुःख भार होगा । इसे सर्वथा व्यर्थ समझना चाहिये ; कारण सारी वस्तु गुणदोषमय हैं :—

सुख दुख पाप पुण्य दिन राती । साधु असाधु सुजाति कुजाती ॥
दानव देव ऊँच अरु नीचू । अमिय सजीवन माहुर मीचू ॥
माया ब्रह्म जीव जगदीशा । लच्छि अलच्छि रंक अवनीशा ॥
काशीमग सुरसरि कर्मनाशा । मरुमालव महिदेव गवाशा ॥
स्वर्ग नरक अनुराग विरागा । निगमागम गुण दोष अभागा ॥

जड़ चेतन गुण दोष मय विश्वकीन्ह करतार ; तो फिर तुम क्यों ऐसा विचार कर हार खा रहे हो ? रङ्गशालामें सब सज्जनोंको निमन्त्रित कर तुम यह कर क्या रहे हो ? ज़रा सोचो तो ।

सूत्रधार—मुझे तो बड़ा असमञ्जस है ।

विदूषक—अरे चलो ! कहो तो तुम हमने कल क्या विचारा था । बस,इसमें और देरी क्या ? चलो'प्रेम-प्रशंसा' का खासा तमाशा इन्हें दिखाकर, रत्ती रत्ती मासा मासा विश्वास दिला दें कि जिस प्रीति प्रतीतिसे हम डरते हैं उसकी रीति ही संसार-शीत-पालाके काटने हेतु भाला

ऊनिया दुशाला है। यह प्रेम-नेम-परिपूरित पवित्र प्रणय परिचालित होतेही परमेश्वर भी पल ही भरमें प्रेमीके पाहुने पहरेदार बन उनके वशमें आ जाते हैं। और मन भी इस जग-प्रबन्धसे अन्ध हो, छलछन्द छोड़, निरद्वन्द बन बैठ, मौजके हौज़में ग़ोता लगाते सुखकी नींद सोता है तो औरोंकी क्या?

सूत्रधार—तो चलो वैसाही होने दो।

(दोनों मिलकर गाते हैं)

"सब मिलि गाओ प्रेम बधाई
यह संसार रतन इक प्रेमहिं और बादि चतुराई॥
प्रेम बिना फीकी सब बातें कहहु न लाख बनाई।
जोग ध्यान जप तप व्रत पूजा प्रेम बिना बिनसाई॥
हावभाव रस रंग रीति बहु काव्य केलि कुसलाई।
बिना लोन बिंजन सो सबही प्रेम रहित दरसाई॥
प्रेमहिं सों हरिहू प्रगटत हैं जदपि ब्रह्म जगराई।
तासों यह जग प्रेम-सार है और न आन उपाई॥

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र।

नेपथ्यमें

(बस करो, बहुत हो गया)

सूत्रधार—अच्छा तो ये चले। अब तुम्हारा ही राज्य है (दोनों जाते हैं)

इति प्रस्तावना।

प्रथम अङ्क ।

प्रथम गर्भाङ्क ।

स्थान—विशाल प्रासाद, विश्राम खण्ड, पलंगके ऊपर मनमोहन और सुशीला ।

मनमोहन—प्यारी ! तुम्हारे गोल गोल सुन्दर गाल, घुघराले काले काले बाल और यह विशाल भाल जग-जालके काटनेवाले महिपाल करालकाल ही हैं । यह तुम्हारी कारी सारी,सारी दुनियाको अपना अधिकारी बनानेकी अधिकारी है । साँवरे वदन सुन्दराईके सदन, मदनके मद मर्दन करनेमें कहीं जनार्दनसे बढ़कर हैं तो इस मलीन मनमोहनका कहना क्या ? किन्तु लाज राजके समाजसे तुम्हें बाज न पाकर आज मुझे भी लज्जा आ रही है । कहो तो ऐसा क्यों ?

सुशीला—प्यारे ! मुझे तो सङ्कोचका सोच है पर तुम क्यों हृदयमें भयका अजय डङ्का बजनेकी शङ्कासे लङ्का विलङ्का तककी बातें मनमें लाते हो ? तुम्हारी माधुरी मूरति रतिपतिकी गतिको भी मन्द कर उनकी मतिमें स्पर्धाका सञ्चार करा दे रही है । तुम्हारी मन्द मुसक्यान चकोरका भी चन्दसे ध्यान छुटा उसे अभिमान का मेहमान बना अपमानित कर दे रही है । तुम्हारे लोल लोचनोंके आलोचन ही से मेरे दुःखद्वन्दका मोचन हो जाता है तो मुझे सोच सङ्कोच करनेमें

धरा ही क्या है? पर स्त्री-जातिमें लज्जाका होना स्वाभाविक है। यह उनका एक गुण है। इससे रहित हो जानेसे हित अनहितका ज्ञान चित्तसे अन्तर्ध्यान हो जाता है और अपमानमें पड़नेका महान कष्ट उठाती हैं; निदान मृत्युका मान करनेको भी चित्त ठान लेती हैं। लज्जारूपी लङ्गर ही संसार रूपी समुद्रमें कुलाचार व्यवहाररूपी प्रचण्ड पवनसे डूबते हुए स्वतन्त्रतारूपी जहाज़को निस्तार करता है। अगर लज्जा-लङ्गर रहित हो, स्वतन्त्रता-जहाज़ क्षणभर भी रह सके तो भाग्यही कहना पड़ेगा और चढ़नेवाले और खेनेवालोंकी चतुराईकी ही बड़ाई होगी। पर वह कबतक चल सकेगा? बिना राजाका राज्य, बिना स्वामीकी स्त्री और बिना जनका धन सदैवही मनुष्यों का मन अपनी ओर आकर्षण कर क्षण भरमें नष्ट भ्रष्ट हो जाता है; इससे लज्जाको स्त्री-कुलका एक आभूषणही कहिये। वह त्याज्य नहीं है। लज्जारहित स्वतन्त्रता सुखद न होकर दुःखद हो जाती है। पाश्चात्य देशोंमें लज्जारहित स्वतन्त्रता फैली हुई है; जिससे स्त्री जाति प्रबल हो गई है। यहाँ तक कि पतिकी दुर्गति, विपत्ति और क्षतिका कुछ ठिकाना ही नहीं है। स्त्री साक्षात ईश्वर, पति आज्ञाकारी दास, जो स्वास प्रति स्वास उनके सहवासकी अभिलाषामें, हाथ जोड़े

सरकसी घोड़के समान उनके आज्ञारूपी कोड़ेकी आवाज़ पाते ही काम करनेको खड़े रहते हैं। इसी लज्जारहित स्वतन्त्रताके पानेके हेतु भारतवर्षकी भी कई एक स्त्रियोंकी इच्छा हुई है; और गौरण्डीय शिक्षा दीक्षावाले बड़े बाबू, वकील, जज लोग भी अपनी बहू बेटियोंकी इसके अनुयायी बना सच्चे न्यायी बननेका दावा करते हैं। पर पीछे उन्हीं स्त्रियों द्वारा उनके मुँह, बचन-कोड़ेसे तोड़े जाकर वे भी दासकी श्रेणियोंमें जोड़े जावेंगे; इसीसे यह मेरी राय है।

मनमोहन—प्यारी! तेरे इस बचनामृतने तो मुझे आप्यायित कर दिया। तू तो पढ़ी लिखी चरित्रवती विदुषी जान पड़ती है। किन्तु लज्जा दो प्रकारकी होती है—एक जिसका वर्णन तूने करके तन मनको अपनी ओर आकर्षण कर लिया है—यह लोकलज्जा है। दूसरी वह जिसे बहुतसे लोग प्रेम और परिचयसे जात हुआ बताते हैं। पर जहाँ सच्चा प्रेम है वहाँ न तो लज्जा और न नेम ही का नाम निशान रह सकता है। यही सङ्कोच कहाता है। सङ्कोचही आत्मोन्नतिका बाधक, लज्जाका साधक, भयका आराधक है। माता पिताकी सेवा प्रति दिन पुत्रको करनी चाहिये अर्थात् सायं प्रातः चरण छूकर प्रणाम करना, चरणोदक लेना, सर्वदा आदर देना आदि ये कार्य्य क्या कुछ बड़े हैं?

पर सङ्कोचहीके सोचमें हम सब सोचतेही रह जाते हैं। इसे दूर करनेपर आत्मोन्नतिके उपाय अपने आप आने लगते हैं। मेरा अभिप्राय इसी सङ्कोच लज्जासे ही है।

सुशीला—प्राण प्यारे! अब मैं समझ गई। जहाँ तक बनेगा सङ्कोचको दूर करनेहीके सोचमें लगी रहूँगी। निःसन्देह यही उन्नतिका बाधक है।

मनमोहन—जब पति पत्नीमें सङ्कोच रह गया तो वे उस प्रकार सुख कदापि नहीं पा सकते। पति पत्नीका प्रेम नेम और आचार तुल्य भाव हुए बिना वे कदापि संसारका उपकार नहीं कर सकते वरञ्च उनसे अपकारकी सदा सम्भावना रहती है।

कारण यह है नीति सनातन जगका देख विचार।
पति-पत्नीका तुल्य भाव हो प्रेम नेम आचार॥
यदि हो मूर्ख अपढ़ पत्नी तब पतिका यह है काम।
करै सुशिक्षित निज नारीको दे शिक्षा अभिराम॥
कोटि यत्नसे लावे उसको उन्नतदशानुसार।
तभी मिले संसारी सुख औ दम्पति प्रेम अपार॥
यदि न होसके यह तो छोड़े पुरुष स्वयं सुविचार।
बने आप भी मूर्ख अनाड़ी निज पत्नी अनुसार।
रहै जंगली जीवोंके सम चिन्ता दुख बिसराय॥
ईश्वरदत्त स्वभाविकै गुण औ प्रेम सहित हर्षाय॥
किन्तु बात यह तबही होगी रहती जब पत्नी गुणखान।

होकर शुद्ध चरित्र पतिव्रत करती जो पति आदरमान ॥
करती हैं पति सेवा जो नित मनमें कपट न लेश ।
सती शिरोमणि वही कहाती सधवा रहे हमेश ॥

सुशीला—यह यथार्थ है। अक्षर अक्षर इसका सत्य है। पर शिक्षा देनेवालेको भी स्वयं सच्चरित्र होना चाहिये। "पर उपदेश कुशल बहुतेरे—जे आचरहिं ते नर न घनेरे।"

हमने बड़े बड़े लेकचरर देखे। स्त्री शिक्षा पातिव्रत धर्म पत्नीव्रत पालन, माँस-मदिरा-भक्षण पर ऐसी वक्तृता देते हैं कि लोग अश्रुप्लावित हो स्तब्ध हो जाते हैं। सुननेवालोंके चित्तमें बात जम जाती है और उसके त्यागनेको वे प्रण बाँध लेते हैं। किन्तु स्वयं लेकचरर साहब ऐसे ऐसे दुराचार और धर्म विरुद्ध काम करते हैं कि "ऊपरमें राम राम, भीतरमें कसाई काम'की कहावत चरितार्थ होती है। जेल जुरमाना भोगते हैं और कभी मारे भी जाते हैं। ठीक है।

व्यभिचारको हार बनाइ गले पहिने सुखसार विहार करै।
धन दै घर फूंकि, करै मन छीन, सुधर्म अचार बिचार जरै॥
सिर लाजकी गांठरी लै दुख हाय! दिवाने भये, बल बुद्धि सरै।
तन लोचन रोगकी पेठी भयो व्यभिचारी अरे ये जरूर मरै॥

मनमोहन—(चुप होकर कुछ घबरा सा जाता है। मानो लज्जा के वशीभूत हो गया हो।)

सुशीला—प्यारे! चुप क्यों हो जाते हो?

मनमोहन—तेरी इस शिक्षाने मुझे लज्जित कर दिया। हाय मैंने क्या क्या पापाचरण नहीं किये। मरण पर्य्यन्त वे कलङ्कके दाग़ हमारे भागसे नहीं मिट सकते। पर अभी तक मुझे तुम्हारे भी सच्चरित्र होनेमें शङ्का ही है।

सुशीला—ऐसा आप न बोलिये। यह यद्यपि आत्म-प्रशंसा होगी। पर तोभी बिना कहे रहा नहीं जाता। शङ्का हो तो श्रीमद्भागवतकी पोथी उठवा लीजिये। या आप स्वयं जाकर हमारे पिताघरमें प्रत्येकको गुप्त रूपसे पूछ लीजिये। यदि किञ्चित् भी असत्यता हो तो हमें नाक कटवा घरसे बाहर कीजिये।

मनमोहन—धन्य पतिव्रते! धन्य मेरा भाग! मैं तो दुराचारी निकला। हाय! हाय!! कुसङ्गतिमें पड़कर सब खो बैठा। क्या करूँ? कहाँ जाऊँ?

सुशीला—अब यह सब रहने दीजिये। आप एक बात करिये। आजसेही प्रण कर लीजिये, कारण अच्छे कार्य्यके हेतु विलम्ब उचित नहीं है "It is never too late to begin" (काग़ज़ क़लम देकर) इसमें लिख उस परात्मनको समर्पित कर दीजिये।

मनमोहन—(लिखता है) लो सुन लो (पढ़ता है)

जय श्रीजगन्नाथ।

परात्मन्,

हमें उच्च कुलमें जन्म दे, अठारह वर्णों में पूजनीय तो तूने

बनाया। पर यदि हम अपना कर्म धर्म छोड़, अपने कर्त्तव्य-कार्य्यसे मुख मोड़, शान्तिसुख-आलयको तोड़ फोड़, निडर हो, इधर उधर भटकें तो तेरा दोषही क्या? जगत् बड़ा जञ्जालिया है। इसे कालिया (देव) से भी जालिया कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी। उसीके वृहज्जालमें फँस हम भी अपना सर्वस घाल बैठे। और कलङ्कने किसे कलङ्कित नहीं किया? किन्तु सुना है पश्चातापसे पापका विनाश नहीं तोभी ह्रास तो होता ही है। बस, इसी आशको फाँसमें फँस हम अब तेरे पास यह अपना काला मुँह लेकर आए हैं। उसे उज्वल कर, हमारा दुःख मेट, क्या तू हमें सुखदान नहीं प्रदान करेगा? अस्तु।

जो जो दुराचरण हमारी आचरण-पुस्तक, जो तेरे पास है, धारण करती है उसे सोचते हृदय काँप उठता है, शोकाश्रुकी धारा सारे शरीरको भिगो डालती है, तथा मन, धन जनकी आशा त्याग, बन बन विहरनेको उद्यत हो जाता है। पर वह भी कठिन है।

गृहस्थाश्रम ही सब आश्रमोंमें श्रेष्ठ है, जिसने इसका पालन पूर्ण रीतिसे किया वह अवश्य एकदिन जनसमाजमें उच्च सोपान धारण करेगा। इसी कारण आजसे हम यह निश्चय कर तुझे लिख देते हैं कि हम सदैव पत्नीव्रतके व्रती बने रहेंगे। और तू हमें इस व्रतमें दृढ़ रखकर हमारे प्रणकों पूर्ण कर।

"लाज मनमोहन कौं राम तेरे हाथ में"

सुशीला—मनमोहन, धन्य तुम्हारा यह मनोदमन, तुम धन्य हो, धन्य हो।

मनमोहन—प्यारी! इसमें मेरी कुछ प्रशंसा नहीं। यह तो सत्सङ्गका प्रभाव है। तूने मुझे मनुष्य से देव बना दिया। मुझे पापीसे पुण्यात्मा किया और संसारमें अक्षय यश लिया। क्यों न हो सत्सङ्ग ही ऐसा है:—

सत्संगसे कोयल काक होते।
सत्संगही से नर पाप धोते॥
सत्संगसे लोग विवेक पाते।
सत्संगसे ज्ञान विशुद्ध आते॥
सत्संगसे लोग कुबुद्धि खोते।
सत्संगसे ही बक हंस होते॥
सत्संग काटै जग मोह माया।
सत्संगसे होय विशुद्ध काया॥
सत्संगसे प्रेम प्रतीति जागे।
सत्संगसे मत्सर क्रोध भागे॥
सत्संग ही है जग वस्तुसार।
सत्संगकी है महिमा अपार॥
साँचो उपदेश देत, भली २ सीख देत।
समता सुविद्धि देत, कुमति हरतु है।
मारग दिखाइ देत, भावहू बताइ देत।
प्रेमकी प्रतीति देत, अभरा भरतु है।

ज्ञान देत ध्यान देत, आतम विचार देत ।
ब्रह्मकूं बताइ देत, ब्रह्ममें चरतु है ।
"सुन्दर" कहत जग संत कछु लेत नाहीं
संतजन निशिदिन, देबोही करतु है ॥"

पटाक्षेप

इति प्रथम गर्भाङ्क

प्रथम अङ्क

द्वितीय गर्भाङ्क

स्थान मकानका बरण्डा।

कमला—(मन ही मन) सुशीलाकी तो चारों ओर बड़ी प्रशंसा हो रही है। आज कल उसे बड़ा सुख है। घर भर क्या लड़के क्या वृद्ध, सभी उसकी सौम्य शीलता और सच्चरित्रता की स्तुति कर रहे हैं। जब तक उसे समाजकी दृष्टि से नीचे नहीं गिराऊँगी तब तक मुझे पेट भर अन्न नहीं रुचेगा। क्या उपाय करना चाहिये?

(सुलोचनाका शीघ्रतासे प्रवेश)

कमलाकी ओर देखकर तू यहाँ क्या करती है? घरका काम धाम तो गया। यहाँ आराम से बैठी २ राम नाम ले रही है।

कमला—सुशीला क्या करेगी? अब उसके आने पर मेरे घरमें रहने का क्या काम? कहना, सहना था सो उसके आते तक।

सुलोचना—वह बेचारी भारी भारी काम को अकेली कैसे कर सकती है? जान पड़ता है तू बड़ी ईर्षी है।

कमला—तुम मुझे ऐसा न कहा करो। सुशीला को तो तुम बड़ा प्यार करती हो और मुझे क्यों बैठी नहीं

देख सकतीं? वह सोती रहती है तब उसे कभी नहीं उठाती हो, यह क्या है?

सुलोचना—राम राम मैं तुझे प्यार नहीं करती। छि: ठीक है *"दुगोड़िया काकरो नो हे"। इतनी सेवा को अन्त तू ने यही मेवा खिलायी।

कमला—तुम हमसे न बोला करो। तुम्हारे घरमें सयानी बघारना। यह तुम्हारा घर नहीं है। तुम जाओ।

सुलोचना—तो क्या यह तेरे बापका घर है? काँची पुरी तो मेरी ससुराल है और यह तो मेरा निज घर है। तू हमें निकालनेवाली कौन? जब तक हमारे माता पिता और भाई भतीजे जीते रहेंगे तबतक तुझे कौन पूछता है?

लक्ष्मीका प्रवेश—

लक्ष्मी—मेरी बेटीको तू निकालनेवाली कौन है? तू ही मेरे घरसे निकल जा। सैकड़ों दफ़े उसे गालियाँ देदे निकल जानेको कहती है। उस बेचारी दुखिनी निस्सहाय को तू इस प्रकार अनादर कर, क्या मेरे सत्कारकी भाजन बन सकेगी? यही प्रत्युपकार है? मूर्खा, प्रचण्डा, तू मेरी बेटीको ऐसा न कहा कर (तीनों आपसमें खूब लड़ती हैं)

* दो पैरवाले (मनुष्य) किसीका उपकार नहीं मानते।

इतना सुनकर (हरिनाथका प्रवेश)

यह क्या ? क्यों लड़ाई हो रही है ? सत्य है।

लोग अधिक होजाते जहाँ।
होती नित्य लड़ाई तहाँ॥
जगत् निरादर करते महा।
ईर्षा आ जाती है वहाँ॥
जिस घरमें है कलह रहा।
कहाँ वास लक्ष्मीका वहाँ ?

होती है लड़ाई जहाँ, कपट विराजै वहाँ
तहाँ कहाँ प्रेम प्रीति जगकी भलाई है।
लाई है बुराई फूट चुगली चुड़ेलिन ये
चिन्ता है दहति उर बल बुधि खाई है
खाई है जहान जान, मान अपमान लायो
सिर लाज गाठरी हूँ लखिये धराई है।
राई है कुमति की ये सुमति विदारै मार
जार लच्छमी हूं देत ऐसी ये लड़ाई है।

अब इस घरका नाश दीखता है। सम्मिलित हिन्दू-कुटुम्ब-प्रथाके ये ही दूषण हैं।

एक ही की कमाई पर सबको दुहाई सुहाई है और नित्यकी लड़ाई को ही ये लोग भलाईकी कलाई समझते हैं। कहाँ तक पुरे।

कमला—तो हमको अलग कर दो ! हम कमावेंगी खायँ-

गी, सुख मनावेंगी। रोज़ रोज़ की लड़ाई अच्छी नहीं होती। हम तो इस घरके लिये बोझ हो गये हैं। सभी हमें गालियाँ देती हैं (रोती है)

भारी शोर होता है और ज़ोरसे लोग दौड़ कर आते हैं।

हरिनाथ—(सिरमें हाथ मारकर) हाय! मुझे तो कुछ उपाय नहीं सूझता। अन तो दिन २ बढ़ते जाते हैं, धान्य धन दिन २ घटते जाते हैं। सुखके बदले बुढ़ापे में अब ऐसा दुःख पाते हैं। एकके लिये गहना बनवाया तो दूसरेको ईर्षा आई, दूसरेके लिये सारी आई तो तीसरेको नहीं सुहाई। हाय! हाय!! ये तो लड़ाई कर कर कोप-भवनमें शयन करें और हम इन्हें मना मना कर मरें। मार खाना ही इन्होंने सदा ध्याया है। हाय! (रो रो कर विलाप करता है)

दुख कवलित होके हो गया मैं दिवाना।
बन २ फिरनेको चाहता चित्त मेरा॥
विपति जग गृहस्थोंको रहे घेर नाना।
मन अब दुख चिन्ताका हुआ हाय! डेरा॥
कलह नित करें ये, देखिये रोज रोतीं।
समझ नहिं इन्हें क्या मार जो है सुहाती?
निडर सकल होके फूटके बीज बोतीं।
अहह विधि करूं क्या, जान क्यों हा! न जाती॥

लक्ष्मी—निश्चय ही इस घरका नाश निकट है। कहाँ कहाँके

ऐसी दुष्टा आई हैं जो हमारे घरको फोर फारकर, धन सम्पति नष्ट भ्रष्ट कर, नाना प्रकारसे विपत्ति और कुमति लाती हैं।

देवयानी—मैंने हज़ार बार कहा पर मेरी बातें तो भेड़की भें भें हैं। सुनता ही कौन है ? ऐसे स्वतन्त्र जीवन में भी ये मन दुखा रही हैं। (ज़ोरसे तालीमारकर) जाय घर अब नष्टभ्रष्ट हो जाय। मैं तो अब इनके सामने कुछके बराबर नहीं। सब सयानी हो गई। अब मैं इनकी चेरी हो गई। राँध राँध कर इन्हें खिलाना, पिलाना सुलाना और उसके पलटेमें गाली खाना और रो रो कर जी दुखाना। छि: संसारमें मेरे ही जीनेको धिक्कार है! हाय! हे राम! (दीर्घ-स्वास लेती है और चुप चाप बैठ जाती है)

सुलोचना—क्यों नष्ट होगा तुम्हारा घर ? मैं यहाँ से निकल जाऊँगी तो सब सुखी होंगी। यही बात है और कुछ नहीं। मैं ही लड़ाईका कारण हूँ न ?

लक्ष्मी—बेटी, तू जी मत दुखा। यह तेरा ही घर है। इन दुष्टाओंको अभी उचित दण्ड मिलेगा। जाने दे। सुशीला अब मर जाय या सर जाय तू मुँह मत खोलना। इन्हें बनाने दे।

कमला—बस, तो हमसे बात कोई मत बोलो।

सुलोचना—क्यों नहीं। तू किसी को मार डाल और तुझे

कोई बात तक न बोले और बोले तो तू ढोल पीटे और लड़ाई करे। कल तू ने सुशीलाके नहानेके पानी में गोबर घोल दिया। परसों पानीमें किरासिन तेल चुपचाप डाल दिया। नरसों तीन चार औरतोंको ले उसके नहानेके वक्त खड़ी रही और व्यङ्ग वचन बोलती रही। पर वह वेचारी चूँ तक नहीं बोली। तू अब कैसा भी कर हमें क्या? मैं तो जाती हूँ (चली जाती है)

कमला—(डर कर) मैंने तो ऐसा कभी नहीं किया। (मनमें) बातें तो ये सब जान गई अब कुछ बहाना करना चाहिये—(स्पष्ट) हाय! मुझे चक्कर आ रहा है। (गिरती है) लक्ष्मी पकड़कर उसे भीतर ले जाती है।

मनमोहनका प्रवेश—

(देवयानीकी ओर देखकर) अब तो मैं उपजीविकाके हेतु राधापुरी जाना चाहता हूँ। कारण एककी कमाई पर दश जनेका रहना अच्छा नहीं। कल जानेका निश्चय हो गया है। आपकी क्या राय है?

देवयानी—बेटा, मैं तो कदापि राय नहीं दे सकती। पर तू सुशीला से तो सम्मति ले ले। मैं घरसे जाती हूँ जाती है)

मनमोहन—प्यारी सुशीला! तुम्हारी इस बातपर क्या राय है? प्राण वल्लभे! क्यों चुप हो रही हो?

सुशीला—(आँखोंमें आँसू भरकर) हाय ! इसके सुनते ही मेरी बुद्धि चकरा गई । शरीर पसीने से भीग गया । देह शिथिल हो जा रही है ।

मनमोहन—ऐसी कातरता क्यों करती हो ? विपत्तिके समय धैर्य धरना चाहिये । मेरा जाना तो होगा ही ।

सुशीला—प्राणनाथ ! प्राणनाथ ! तुम्हारे जानेसे मैं अकेली क्यों कर रह सकती हूँ ? कमला भला मुझे इस दुःखमें भी निश्चिन्त रहने देगी ? वह मुझे मार ही डालेगी ।

मनमोहन—कमला तेरा क्या कर सकती है ? अपना काम धाम ठीक ठीक करना, बस ।

सुशीला—कमला तो तुम्हारी हितू है न ? तुम उसे प्यार करोगे, सत्कार करोगे और उसका सब प्रकारसे उपकार करोगे । तुम उसे बात तक कब बोलते हो ? जाओ, अब मेरी आवश्यकता ही क्या ? इसीलिये ही तुम अब मुझे यहाँ छोड़ जाते हो कि कमला मुझे मार डाले और तुम सब सुख पूर्वक रहो ।

मनमोहन—ऐं, ये कैसी बातें करती हो ? तुम वृथा कुपित होती हो । यह रोज़ रोज़का रगड़ा, इधर उधरका लड़ाई झगड़ा! मेरे सिर तो यह बड़ा भारी पत्थर पड़ा ! मैं तो औरतोंकी लड़ाई में स्वयं कुछ नहीं कहता । तुम आपसमें इसका निर्णय कर डालो । मैं इस पर यदि

कुछ कहूँ तो भाई भाईमें फूट पड़ जायगी। और भाइयोंमें फूट पड़ी कि घर गया। नीतिका भी कथन है :—

भाई २ फूटहु नाहीं दुखदाई है फूट महान ।
रावण दशमुख वंश नाश भय फूटो जब भाई संगजान ॥

और भी :—

रूठिये न जननीसे, टूटिये न सज्जन से
हटिये न दुर्जनसे, फूटिये न भाईसे ।"

सुशीला—ठीक है। पर मैं तो तुम्हें छोड़ और किसी से कुछ भी नहीं कहूँगी। चाहे मुझे मार डालें।

मनमोहन—तो फिर सहती रहो। वह आप कुछ दिनमें अच्छा वर्त्ताव करने लगेगी। देखो शान्ति पूर्वक रहना, मैं जाता हूँ।

सुशीला—आँखोंमें आँसू भरकर हायरे दई! हाय! हाय! क्या हुआ! हाय!
प्राणनाथ! हाय!! (मनमोहनके शरीर पर अपना सिर रखके)

'तुम्हें छाडि हमें चलि जाइहो जो पिय नैन ये सैन करेंगे कहा ?
मुखसों यहि हाय ! कढ़े किमि बैन न चैन परे निशि मैन दहा।'

रतियाँ बतियाँ सुमिरै छतियाँ धरकैंगी तबै दुख व्है है महा।
किहि पापके तापसों आप चले विरहागिनं ताप न जावै सहा?

(सिसक कर रोती है)

मनमोहन—दुपट्टे से सुशीला के आँसू पोंछकर—

लगि हाय! शरीर अधीर करै ये वियोग के परिको तीर हिये।
कुम्हिलान लगे अब नैन हैं बैन अथान लगे धी पयान किये।
करि नेह सुगेह और देह हूँ बंचि अंदेश न कै कछु प्रान दिये।
तन पिंजरमें किमि प्रान रहै जु कहौं तुहि "मैं अब जात प्रिये!"

स्तब्ध हो जाता है और रोता है।

नेपथ्यमें और क्या देरी है जल्दी कीजिये।

(शीघ्रतासे सुशीलाको आलिङ्गन कर चुम्बन करता है। और आँसू पोंछते पोंछते चला जाता है)

सुशीलाका फूट फूटकर रोना सुलोचनाका शीघ्रतासे प्रवेश।

सुलोचना—सुशीला, धीर धर, अधीर न हो।

सुशीला :—आँगनके पेड़की ओर मुँह फेरकर :—

"अहो अहो प्रिय रूख कहूँ देख्यो पिय प्यारो।
मेरे हाथ छुड़ाय कहो वह किते सिधारो॥"

हाय मैं मर क्यों नहीं जाती

राकसि रात न सात काह मम गात दुखावत ।
निकसै कछुक न बात, हीय अतिशय अकुलावत ॥
अरे सुधाकर कर भर भर विषसर मोहि मारहु ।
देहं म्यानसों प्रान खींच अब मोहिं उवारहु ॥
अरे पपीहा पीव पीव का रटत सदाही ।
'मरत हाय मैं' कहहु जाय मम पीय जहाहीं ॥
रे चकई भुलवाइ रखो तू क्यों पिय मेरे ।
सुखसों करत विहार सुनत नहि हा किमि टेरे ॥
अरे अमल तू कमल देखि मम पीय लुभानो ।
लाहु शीघ्र दै जाहु नाहि तुअ पिय कल हानो ॥

कमलाका शीघ्रतासे प्रवेश—(मनमें) अच्छा बना अब छाती शीतल हुई। (स्पष्ट) सुशीला ! क्यों रोती है ? देख रात अब बहुत हो गई। चल, सो रह। उसके लिये क्यों ज़ार बेज़ार हो रोती है ?

एक दूतका प्रवेश ।

सुलोचनाके आगे एक पाती देकर प्रणाम करता है ।
सुशीला उसे पढ़ती है :—
प्राण वल्लभे ! प्रिये सुशीला !

देह यहाँ और मन वहाँ तुम्हारे पास। क्या लिखूँ कुछ लिखा नहीं जाता। दूतसे मेरा सब हाल जानना। स्वास प्रति स्वास तुम्हारे सहवासकी अभिलाषमें हम दिन बिता रहे हैं। हाय!

घोर ये शोर चकोर औ मोर को जोरसो हीय मरोरत जात है।
जात हैं आत, डेरात है गात लखो घन ये विरही जन घात है॥
घात है नाहिं अघात तहूं घहरात है घोर जिया भय खात है।
खात है, बात लखात कछू न कटै किमि सावनकी यह रात है।
बिछुरे जब तें बनि योगी फिरौं चहुंलोचन हाय! महा हठ ठानत॥
विरहागिनकी धुनि देखु लगायके प्रेमको चन्दन काठ जरावत।
दृढ़ता अरु संयम खंभन है प्रणभूमिहिं थापि सुधर्म निवाहत॥
करि आसकी भूलना डोरी प्रिये तन फांस तिहारेहि ध्यान लगावत॥
पै धरि धीर सहो, न कहो दुख, चार दिना यहि भांति बिताइये।
मौन ह्वै भौनमें प्यारी रहो शुभ धर्मकी राह पै आइये जाइये॥
देखु बिना सुखको पुनि आइहैं भागिहै दुःख सबै चित लाइये।
या जगमें सुख औ दुख दोऊ फिरैं रथ चक्रसों सोच मिटाइये॥

तुम्हारा मनमोहन

सुशीला पढ़कर मूर्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़ती है।

सुलोचनाका उसे बहुत प्रकारसे समझाना और कमला का आनन्दित होना।

पुन: एक दूतका प्रवेश ।

दूत—सुलोचना ! तुम्हें मैं लेने आया हूँ। अभी तुमको काँचीपुरी चलना होगा। नैहरमें बहुत दिन बीत गये।

सुशीला—हाय सुलोचना ! अब तुम्हारे जानेका यह वज्राघात ठीक है। दुःख अकेले नहीं आते। अब मुझे कौन शिक्षा देगी ? कौन मेरे साथ रहकर मेरे सुख दुःखकी साथिन होगी ? अब कमला मुझे नहीं बचायेगी। हाय ! हाय ! !

पटाक्षेप

इति द्वितीय गर्भाङ्क

प्रथम अङ्क।

तृतीय गर्भाङ्क।

स्थान—राधापुरी, मनमोहनका निवास-स्थान।

(मनमोहन, श्यामलाल और गोपाल)

मनमोहन :—हायरे दई !

काले परे कोस चलि चलि थक गए पाँय

सुख के कसाले परे ताले परे नसके।

रोय रोय नैनन में हाले परे जाले परे

मदन के पाले परे प्रान परबस के।

हरीचन्द अंगहु हवाले परे रोगन के

सोगन के भाले परे तन बल खस के।

पगन में छाले परे नाघिबे को नाले परे

तऊ लाल लाले परे रावरे दरस के॥

गोपाल :—क्या, अभी घर नहीं जाना हुआ ? तुम्हारी छुट्टी का क्या हाल ?

मनमोहन :—देखो न (जेब से निकाल कर) यह अर्जी नामञ्जूर हुई।

गोपाल हाथ में लेकर पढ़ता है :—

Sir,

The wave of the pressure of my domestic duties which I hesitate to mention notwithstand-

ing their grave and paramount importance, hangs me in a state of inscrutability as to heave me up or roll me out to sea without any further support but the ship of kindness of your honour which, I vehemently hope, will convey me safe to harbour by granting me a leave of absence for two months only, and for which act of generosity and kindness I shall remain indebted ever and anon.

I beg to remain &c.

गोपाल :—राम राम तुम्हारा काम तो बिगड़ना चाहता है। इस अर्ज़ी पर भी उस निर्दयी का चित्त नहीं पिघला। हाय !

मनमोहन :—बिगड़ने दो। कहा ही है :—

फेरि फेरि पानी पाठ पूजा जप जोगन में
भोग भगवान हूँ को ध्यान तजने परे।
स्वारथ को पथ भूलि दान परमारथ दै
करि मुँह नीच कटु वाक सहने परे।
घाम प्यास पानी की निसानी नींद, जानै नाहिं,
भूखे कभू रात दिन हाय ! रहने परे ॥

चाकरी चुड़ेलिन की चाल चालि आई याहि,

बड़े २ चूतिया चतुर कहने परे ॥

श्यामलाल—ठीक है। मुझे भी पं० महावीर प्रसाद का यह पद्य याद हो आया।

चाहे कुटी अति घने बनमें बनावे।

चाहे बिना नमक कुत्सित अन्न खावे ॥

चाहे भले पट कभी नर भी न पावे।

सेवा प्रभो, पर न तू पर की करावे ॥

इस सेवकाई की दुहाई है, भाई, यह बड़ी दुखदाई है। मान बड़ाई को विदाई दे, सदा साईं साईं कहते खुशामद करते रहो तभी तो भलाई है; नहीं तो सभी बुराई ही बुराई दिखलाई देती है।

मनमोहन—और अब यहाँ न्याय अन्याय कर्म धर्म का मर्म भी दिन दिन घटता जाता है। खुशामद ही का बाज़ार गरम है। जो शरम छोड़, ग़म खा कर, दम धरे रहे वही यहाँ परम चतुर कहलाता है। गुण पर लोगोंका कम ध्यान है। अस्तु। इस पर भी हम अपने पूर्व विचार ही का सत्कार करेंगे।

गोपाल—तो आपने ज़रूर विद्यापुरी जाना निश्चित कर लिया?

मनमोहन—जी हाँ, हम तो अब अवश्य जावेंगे ही।

श्यामलाल—अच्छी बात है। ईश्वर आपको सफल मनोरथ

कर सत्पथ रूपी रथ पर आरूढ़ करावे। नौकरी कर कर तो भारत की यह दुर्गति हो रही है—खीय जीवन के हेतु पर-मुख जोहना, अपने को बेच गाली मार सहना, हाथ जोड़े सरकसी घोड़े के तुल्य चुप चाप खड़े रहना। हाय, हाय! क्या करें पेट के ही कारण यह हो रहा है तभी तो कहते भी हैं :—(पेट के नाम जग जीता। साँझे खाय बिहाने रीता॥)

मनमोहन—सचमुच, यह पेट जग जीता है? पर तौभी क्या मुट्ठी भर खाने को नहीं मिल सकेगा? कुत्ते कौवे तो साँझ रात तक पेट भर भोजन पा जाते हैं। हम तो मनुष्य हैं; बोल सकते हैं; चल सकते है; हमारा ज्ञान है; विचार है; सब है।

गोपाल—क्यों न?

मनमोहन—तो फिर अब हमने चित्तमें यह ठान लिया है कि विद्यापुरी में आत्मोन्नति कर वक्तृता देने की कला सीखलें फिर घर आकर स्वदेश सेवा में अपनी उम्र काटें। परन्तु मुझे डर है। इस देश के लोगों में माया ममता इतनी अधिक है कि मेरा विद्यापुरी जाना सुन कर घर भर न दौड़ पड़े।

गोपाल—चले जाने के पश्चात् वे आप शान्त हो जावेंगे।

कुछ चिन्ता न करो। आप विद्यापुरी शीघ्र चले जाओ।

मनमोहन—तो आप लोगों से मैं विदा होता हूँ। कल प्रात: विद्यापुरी के लिये प्रस्थान करूँगा।

इति तृतीय गर्भाङ्क।

प्रथम अङ्क समाप्त।

द्वितीय अङ्क ।

प्रथम गर्भाङ्क ।

स्थान—विश्राम खण्ड ।

नरसिंह और कमला बैठे हैं ।

कमला—(नरसिंह की ओर देख कर) आप मौज करिये और मैं यहाँ झञ्झट में पड़ कर सदैव आँसू ही पोछती रहूँ । सुशीला मुझसे रात दिन लड़ाई करती है । बात बात में लक्ष्मी भी मुझे गाली देती है और सात पुरखों का उद्धार करती है । सुशीला न काम करती न धाम । बस, रातदिन सोती ही रहती है । मैं कामकर करके दुबली हुई जाती हूँ । तुम कहने से कुछ सुनते ही नहीं । सुशीला बड़ी कपटिन है । वह तुम्हारा घर डुबाना चाहती है । मनमोहन को सिखा पढ़ा कर उसे राधापुरी भेज दिया कि जाओ तुम नरसिंह के ऊपर झूठा मुकदमा चलाओ और उसे फँसाओ । मनमोहन की वो चुपड़ी बातों पर न भूलिये । वह पक्का उस्ताद है, यह बात याद रखिये कि कुछ दिन के बाद तुम्हें और तुम्हारे घर को वह बरबाद करेगा ही । अपनी स्त्रीके लिये कैसे जेवर और

कपड़े लाता है और मेरे लिये कहो, कब लाया ? क्या उसी का ही धन है ?

नरसिंह—तेरी बुद्धि बावरी सी हुई जाती है। पहिले तो तू ही सुशीला की प्रशंसा करती थी, अब क्यों उस पर रुष्ट हो गई ? वह बीमार है तभी काम करने में उसका जी नहीं लगता होगा। मनमोहन—हमारा अपकार कभी करनेवाला नहीं है उसमें हममें अन्तर ही क्या ? तुमहीं पहिले से लड़ाई करती होगी। अब ऐसी बात फिर जो मैंने सुनी तो तुम पर मार पड़ेगी।

कमला—हाँ ! क्यों न ?

जो कहते कुछ हित की बात।
लोग मारते उनको लात॥
हम तो हैं घर घालक नहीं।
देख बुराई हों चुप कहीं॥
हमें सत्य भाता है एक।
असत न कहें हमारी टेक॥
दुर्लभ सीख वचन जग बीच।
सुनते पर उसको नहिं नीच॥
कहा तुम्हें तव हित के लिये।
पाते पर सब अपना किये॥

आओ बनाओ। हमें क्या ? 'ऊधोसे लेना न माधोको देना।'

रूष्ट होकर मुँह फेर लेती है और मौनमन्दिरका मूर्तिमान् भगवान् बन जाती है।

नरसिंह—कुपित क्यों होती हो? प्यारी, सुनो तो। इधर तो देखो। क्षमा करो। अरे यह क्या? 'मोर जोहार तोर चुपेचुप' इतनी विनती की पर सब भाड़ में। निर्दयी क्यों हुई जाती हो?

कमला—हमें कुछ न बोलो। तुम्हारा हमसे काम ही क्या?

नरसिंह–तुम्हारा हमारा काम नहीं? तुम हम तो सब दिन के साथी हैं। मा, बाप, भाई बहिन तो अपने हित के लिये ही हैं। तुम क्यों कुपित होती हो? अच्छा, जो तुम कहो वही करें। क्या मनमोहन को अलग कर दें?

कमला—अलग करोगे तभी तो मैं तुमसे बात करूँगी, नहीं तो कभी नहीं।

नरसिंह—देख, कल ही सुशीला को अलग कर निकाल दूँगा। यह अपने मनमोहन के पास चली जायगी और मनमोहन तो निकल ही गया है।

(एक दूतका प्रवेश।)

(नरसिंह को पत्रिका देकर प्रणाम करता है।)

कमला—यह क्या है?

नरसिंह—सुनो (पढ़ता है

पूज्यपाद!

'सेवाधर्मः परमगहनोयोगिनामप्यगम्यः' सत्य है। सेवकाई की दुहाई है। आजही से मैंने उसे तिलाञ्जलि दी। मैं अब विद्यापुरी जाता हूँ। वहाँ कुछ विज्ञानका अध्ययन कर आत्मोन्नति करूँगा और वक्तृता देना भी सीखूँगा। तुम सब मेरे वियोग दुःखसे दुखित न हो। घर में सब को आश्वना प्रदान कर विद्या का लाभ समझाइये। मैं थोड़े ही दिनों में सकुशल घर आ पहुँचूँगा।

आपका चरण सेवक
'मनमोहन'

कमला—अच्छा हुआ, बला टल गई। अब सुशीला को मार कर निकाल दीजिये (हँसती है)।

नरसिंह—दुष्टा, हमारे भाईके जाने से तू इस प्रकार आनन्दित हो रही है। चल, तेरा मुख नहीं देखता। तू ने मुझे आज बहका दिया था। अच्छा हुआ कि पत्र मिल गया नहीं तो तेरी प्रेरणा से सुशीला को मैं घर से निकाल कर कलङ्क का भागी होता। (रोता है) हाय! हाय!!

देवयानी का प्रवेश।

देवयानी—नरसिंह, क्या हुआ? क्यों रोते हो?

नरसिंह—मनमोहन को पत्र आया है। वह विद्यापुरी चला गया है।

देवयानी—हाय बेटा! (रोती है)

अभी जो सुशीला सुन पावे तो न जाने क्या कर डाले? नरसिंह तुम जाकर अभी जल्दी दूत भेजो नहीं तो स्वयं जाकर उसे ले आओ (नरसिंह जाता है)

रुदन सुनकर सुशीलाका शीघ्रता से प्रवेश।

सुशीला—क्या हुआ?

कमला—क्या हुआ? मनमोहन विद्यापुरी चला गया।

सुशीला (सुन कर) मूर्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़ती है।

देवयानी गोदमें ले उसे संज्ञा दिलाती है।

सुशीला—कोई मुझे प्राणपति के पास ले चले; नहीं तो प्राण अब छूटते ही हैं। हाय, हे दई! क्या हुआ?(रोती है)।

कमला—तू रो मत। जाना हो तो चली जा। तुझे कौन रोकती है? रातदिन रो रो कर घर में हल्ला मचा रही है।

सुशीला—(मनमें) इतने दुख पड़ने पर भी कमला को कुछ दया नहीं आई। वह मुझे वाक्‌वाणसे अबतक भी बींध रही है। सुलोचना भी नहीं जो मुझे ढाढ़स बँधाती। हाय रे करम! इस प्राण पामर को कहाँ तक दुःख सहना है? हाय दई! क्या हुआ? कुछ जाना नहीं जाता।

तरसत श्रौन विना सुने मीठे वैन तेरे क्यों न तिन
माहिं सुधा बचन सुनाय जाय।

तेरे विनु मिले भई झाझर सी देह प्रान राखिलेरे
मेरो धाय कंठ लिपटाये जाय।
हरीचन्द बहुत भई न सहि जाय अब
हा हा निरमोही मेरे प्रानन बचाय जाय।
प्रीति निरवाहि दया जिये में बसाय आय
एरे निरदई नेकु दरस दिखाय जाय॥
"लागैगो पावस अमावस सी अँध्यारी जामें,
कोकिल कुहुकि कूत अतन तपावैगो।
पावैगो अथोर दुःख मैन के मरोरन सों,
सोरन सो मोरन के जिय हू जलावैगो।
लागैगो कपूरहु की धूर तन पूर घिसि,
भार नहिं कोऊ हाय चित्तको घटावैगो।
ठावैगो वियोग "जगमोहन" कुसोग आली,
विरह समीर वीर अंग जब लागैगो॥"

द्वितीय अङ्क।

द्वितीय गर्भाङ्क।

स्थान—विद्यापुर की गली।

एक वैष्णव रामानन्दी लगाये, गङ्गा जमुनी जटा बनाये, हाथमें कमण्डल लटकाये, अलफी नाये, खञ्जनी बजाता गाता आता है।

लागे लगन मगन रहु भाई रे (टेक)
पग पग पगन जतन करि धरिये, कलिमल हरन न आन उपाई रे ॥
हानि लाभ सुख दुख सम मानहु नित प्रति हरि चरन न चित लाईरे।
'मालिक राम' राम के रमता पुरुषारथ पथ सुगम दिखाई रे ॥

एक फकीर धीर भावसे पगपर पग धरता मगन हो गाता चला जाता है।

खुला है ईश का कालिज पढ़ो नर मौज से सारे।
समय शिक्षक खड़ा आगे पढ़ाता देखिये प्यारे ॥१॥
न पड़ता फीस जुरमाना यहाँ माफी पढ़ाई है।
लिखा लो नाम तुम अपना करो मत कुछ बहाना रे ॥२॥
उमर पोथी धरी आगे है पढ़ रात दिन उसके।
लिखी है दिन व दिन करणी व जो कर्त्तव्य तुम धारे ॥३॥

खतम पोथी जो होवेगी परीक्षा मौत लेवेगी।
हुए जो पास पा डिग्री चलोगे स्वर्ग रतनारे ॥४॥
हुए नापास जो भाई नरक उनको मिलेगा फिर।
जहाँ रोते रहेंगे ही सदा वे जायगे मारे ॥५॥

चार पाँच बाबू लोग गाते बजाते उछलते कूदते आते हैं।

"साधो भाई पाँच हुए हम यार।
नित बोतल की नैया पर चढ़ होते हैं भव पार॥
अपने एक बराण्डी राजा शेम्पियन है रानी।
कभी न डरे किसी से औ नहिं करें किसी की हानी॥
नहीं तवक्को रखे किसी से नहीं किसी की परवा।
मदिरा छूट किसी के कोई काम न आवे सरवा॥
क्यों गंगा जल में है कीचड़ सागर का जल खारा।
जिस में मेला फीका जल पी जगत न जावै सारा॥
तुम नहिं हुए शेक्सपीयर हुआ, काहे से कवि भारी?
यही जानलो वह पीता था सदा सुरा की झारी॥
कैसे सुरगण ने असुरों को मार भगाया दादा?
सुर पीते थे लाल लाल भई। असुर बिचारे सादा॥
इस भव के जंगल में जो कोई है बेगाना।

एक सुरा है अपनी हमने निश्चय यह पहचाना ॥
हमें न देना गाली प्यारो और मना मत करना ।
हमें किसी का दूध दही घी चुरा पेट नहिं भरना ॥
एक मजा केवल लूटेंगे और न चाहें दूजा ।
नाचें गावें धूम मचावें कर मदिरा की पूजा ॥"

बाबू बालमुकन्द गुप्त ।

गली वाले सब हँसते हैं ।)

एक बुड्ढा साधु, हाथसे माला टरकाता और लाठी के बल धीरे चलता गाता आता है ।

कहो सब राधेश्याम हरी [टेक]
हरी हरी भजि अरे मूढ़ मन गणिका आप तरी ॥
शवरी गीध भील गज मीरा हरि भज पार हरी ।
तुलसी, सूर, कबीर मलूका तरे नाम सुमरी ॥
बालमीक नारद अस मानुष हरि भज कीर्ति करी ।
बनत बनत बनि जइहैं रसने भज तू राम अरी !

मनमोहन—यहाँ के लोगों का सुख कौन मुख से वर्णन किया जाय । देख कर ही भूख भाग जाती है । मौज की तो यहाँ फौज ही पड़ी हुई है । अभी तो चार पाँच सालतक घर का नाम भी नहीं लूँगा ।

बलरामदास—वाह प्यारे मनमोहन! अभी से लुभा गये क्या? हँसता है।

एक दूतका घबराये हुए प्रवेश।

दूत (खड़ा होकर) भाई, सन्त-गली कौन सी है? हमें वहाँ एक बड़ा काम है?

बलरामदास :—कहो तो क्या काम है?

दूत—कोई एक हमारे गाँववाले मनमोहन को हम लेने आये हैं।

मनमोहन—(डर सा जाता है) कहो भाई, क्या हुआ?

दूत—अहो मनमोहन, तुम्हें मैं चीन्ह नहीं सकता था। बस, चलो अभी, इसी घड़ी घर चलो।

मनमोहन—क्यों कुछ अनिष्ठ तो नहीं हुआ?

दूत—हम क्या जानें अनिष्ट हुआ कि कनिष्ट हुआ। घर भर तो रोते थे। नरसिंह भाईने बुलाकर मुझे लाया और कहा जाओ मनमोहन को जल्दी घर ले आओ।

मनमोहन—चलो, हाय दई! सब ओरसे दुख दिया :—

अहो मन माया तजिये तजिये।

मायाने है जग अरुझाया,

साधू संत सकल भर माया,

दाया रहित कपट की काया,

इसे दूर अब करिये करिये करिये (?)

बाबू को काबू में लाया,
पण्डित को खण्डित कर खाया,
योगी को भोगी बनवाया,
इस साँपिन से बचिये बचिये बचिये (२)
महादेव का ध्यान छुड़ाया,
ब्रह्मा को इसने ललचाया,
विष्णु जलधि के मध्य सुलाया,
जगतमोहिनी डरिये डरिये डरिये (३)
उन्नति नासि कुमती फैलाई,
दुर्गति करके सुमति भगाई,
ज्ञान ध्यान वल विद्या खाई,
तजि यहि प्रभुपद भजिये भजिये भजिये (४)

हाय! सब आशा अब बिला गई। चलो, घर में न जाने क्या हुआ। (दोनो जाते हैं)

पटाक्षेप।

इति द्वितीय गर्भाङ्क।

द्वितीय अङ्क।

तृतीय गर्भाङ्क।

(स्थान—नरसिंह, देवयानी और लक्ष्मी बैठे हैं)

देवयानी—आज चार दिन हुए मनमोहनका कुछ समाचार नहीं मिला। दूत पहुँचा कि नहीं। कुछ उपाय नहीं सूझता। वह नाहक चाकरीके हेतु गया। कृषि-कार्यसे उत्तम जीविका संसारमें और है ही नहीं। कृषि से ही राजा ज़मींदार और माफ़ीदार होते हैं। कृषिके बलसे ही गवर्नमेण्ट स्थित है। खेती पारस पत्थर है। लोहा छूते सोना होता है। एक बीज दो तो वह बदले में सौ देती है। जिस प्रकार बिना भोजन किये मनुष्य अपनी प्राण-रक्षा नहीं कर सकते; उसी प्रकार बिना खेतीके संसारको और और जीविकाएँ नहीं रह सकतीं; इसी से कहा है "उत्तम खेती" इसे छोड़, मनमोहन निकृष्ट चाकरी के हेतु क्यों गया? वह बड़ा स्वतन्त्र प्रकृतिवाला मनुष्य है। चाकरी की परतन्त्रता उसे नहीं भाई होगी तभी तो वह चल भी दिया। हाय! नरसिंह, अब क्या करना चाहिये? सुशीला खाना, पीना, नहाना छोड़ रात दिन रोरही है।

नरसिंह—माता! मैं क्या उपाय बतलाऊँ? मेरा तो ज्ञान

डूब गया। वह क्यों बिना कहे बोले विद्यापुरी चला गया। अब भला, हम क्या करें? दूत उसे मिला कि नहीं। अच्छा मैं ही आज शाम को रवाना होऊँगा।

कमला—तुम्हारे जाने को कुछ आवश्यकता नहीं। हम तुम्हें कदापि जाने नहीं देंगी। मनमोहन आवे अथवा न आवे, हमें क्या? सुशीला को आप किसीकी मारफत वहाँ पहुँचवा दीजिये।

नरसिंह—सब इसी को करनी है, इसीने लड़ाई कर कर के भाई को निकाला है। अब ऐसी बात बोलती है। इसे खूब मार पड़े तो चेत आवे।

देवयानी—बेटा! जाने दो। यह बड़ी ईर्षी है। मनमोहन और सुशीला को देख कर जल जाती है। अभी लड़ाई भिड़ाईका कुछ काम नहीं। मनमोहन की चिन्ता करो।

नरसिंह—हाय! मनमोहन तू कहाँ है?

(मनमोहन और दूतका शीघ्रतासे प्रवेश)

नरसिंह का दौड़ कर मनमोहन को गले लगा लेना और अश्रुप्लावित हो कुछ बोलनेका यत्न करना पर प्रेम-विह्वलता से लड़खड़ा जाना।

मनमोहन—(नरसिंह और देवयानीके चरण छू कर प्रणाम करना) माता! तुम क्यों रोती हो?

देवयानी—बेटा! इस प्रकार लरिकाई क्यों करता है? घरमें

भला सब से कह के जाता। अचानक तेरे जानेका हाल सुन हम लोग महा चिन्तित हो रोने पीटने लगीं। चार छ:दिन तक चूल्हेमें आग तक नहीं जली। हाय! हाय! सुशीला की दशा मैं नहीं वर्णन कर सकती।

मनमोहन—मैं उत्तम कार्य के हेतु गया था, उसमें प्रमाद करना अच्छा नहीं। देखो तो कितनी हानि हुई। हमें और तुम्हें सबको कष्ट हुआ। अस्तु सब अच्छे तो हैं?

देवयानी—बेटा! सुशीला खूब बीमार है। उठने चलने की शक्ति नहीं है।

मनमोहन—(मूर्च्छित हो गिर पड़ता है) हाय! हाय! सुशीला की यह दशा! सुशीला, तू तब की अब नहीं है क्या?

मृगलोचनि, लोचन देखि लजै तुअ,
हंस छिपै लखिके तुअ चाल।
तव भाल विशाल सुलाल गुलाब सों गाल,
करैं तन हाल बेहाल॥
घुँघरारी सुकारी लटैं मन मोहती नागसी,
सुन्दर शम्भुको माल।
दुइ भौंह कमानके लागि रही कटि जावत लोचन है,
जग-जाल॥

मेरी वह सुशीला कहाँ हो?

प्यारी तू तो रोग के हवाले हुई और मेरे शरीरमें यह भाले गिरे। कैसे बचूँ, कहाँ जाऊँ?

हमरो सुख-संयोग, रोग भोगके हेतु हा!

भयो हाय! दुख-योग, प्यारी! धाता वाम सुनु॥

अच्छा, चलूँ देखूँ तो प्यारी की दशा कैसी है।

पटाक्षेप।

इति द्वितीय अङ्क।

तृतीय अङ्क।

प्रथम गर्भाङ्क।

(स्थान—घरका बरेण्डा। मदन और मनमोहन बैठे हैं।)

मदन—प्रिय मित्र मनमोहन! आज कल आप इस प्रकार चिन्तित क्यों दीखते हैं? मुख पर ऐसी उदासी क्यों छाई हुई है? देह दिन दिन दुर्बल दीखती है। सदैव अनमने क्यों दीखते हो? कहो तो सही, यह किसकी करामात है?

मनमोहन—क्या कहैं।

अहैं जाकी बाहैं गहैं, जाहि चित सोहूँ चहैं
बात नित जाकी सहैं, रहैं जिहि संगमें।
संगमें सुगाति लहै, देख गति रांति डहै
मुख सुधा जाकी बहै, राते रस रंग में॥
रंग में अनंग दहै, भाल भव-जाल बहै
नैन मन-चैन अहै, मद के उमंग में।
मंगन भये हैं जाकी प्रेम-भीख माँगिवे में,
ब्रीड़ा शोक ताकी होत पीड़ा अंग अंगमें॥

बस इसी से तुम समझ जाओगे। अधिक क्या? यही

मेरी देहको दहन करे देती है। प्यारी सुशीला कई दिन से खूब बीमार है।

मदन—तो उसका उपाय क्यों नहीं सोचते ?

मनमोहन—सोचूँ कहाँ से, वहाँ से तो मुझे च्युत हो कर यहाँ आना पड़ा है और जब तक मैं साथ रहा न उसने ही कहा। केवल समय समय पर भय खा कर आर्त स्वरसे रोना, न सोना, न सोने देना। बारबार हज़ार बार पूछा पर कूका हो गया। जब पीड़ा की पीड़ा शरीर को अधीर करने में शूरबीर होने लगी, मैं ताड़ गया कि बाढ़ बढ़ती चली आई। चारों ओर शोर मच गया। दिन बीता, घरवालोंने बहुत कुछ उपाय किये पर 'हाय हाय' दिन दिन दून होने लगी, न खाय न जाय। रात को करामात बात से बाहिर। नई नई नोबतें भईं। कभी गोदमें लेना, कभी छाती पर रख देना, कभी सन्तोष धराना, कभी इधर उधर की बातें कर जी बहकाना, कभी कुछ बहाना बनाना, कभी संसारका सुख दुःख समझाना; पर सब निष्फल हो हुआ। रात बीती। प्रभात अपना गात फैलाए हमको अपनी करामात बतानेको आ पहुँचा। भाग्यका सितारा एक दम लोप होगया। क़दम क़दम पर हम दम पर दम भरते, हरदम 'बम बम' बकते सिसकते अलग ही से ताका करते थे। कभी पास जाने की आस की और जो

कभी गया भी तो दया मयाका नया सञ्चार हो जाता। हृदय सहर जाता। मन भी हरसाता, पर वह दुराशा मात्र हो थी। अस्तु।

हम अलग अकेले खाट पर लाट बने सुख-संयोग की बाट जोहने लगे। जगे, भगे, रोये, सोये सब किये। दुःख के दिन छिन छिन गिन गिन के बिताने लगे पर पल भी कल्प से अधिक जान पड़ते। हमारा करम ही फूटा है। क्या करें ग़म खा खा दम धरे ही रहे। कई सप्ताह तक पीड़ा की आह में आह भरते उसके दिन बीतते। रात तो कराल काल की विशाल गालही थी। चिन्ता से कुटुम्ब चिन्तित हो गया। उपाय कर हार खा बैठे पर पीड़ा का पार नहीं मिला। किन्तु "सबै दिन नाहिँ बरोबर जात" ठीक है।

"काहू पै दुःख सदा न रह्यो न रह्यो
नित काहु के सुक्ख अगारी
दोऊ फिरै रथ चक्र मनोतर
ऊपर आपनी २ बारी"

(राजा लक्ष्मण सिंह)

दुख-दिन बीत सुख-रात आ पहुँची। भाग्यतारा पुनः चमकने लगा। मेरी मन-कुमुदनी उसका मुखचन्द्र देख विक-

सित हो गई। आनन्द सीमा की ओर छोर ही न रही। पर दो चार दिन हुए फिर भी रोगग्रस्त हो गई है।

मदन—तो क्या यही.........

(शीघ्रता से कमला का प्रवेश)

कमला—चलो, मनमोहन, देखो तुम्हारी सुशीला कैसी लीला कर रही है। बात कहने पर कुछ कान ही नहीं देती। अभिमान का मेहमान बनी, वह हमें अपमानित करा रही है। धिक्कार है तुम्हें और तुम्हारे इस परिवार को! सुशीला हमारे घरको नष्ट भ्रष्ट करेगी। तुम तो साहबों से भी बढ़ कर प्रेम करते हो तथा उसे मेम बना सिर के ऊपर से उसका पाँव नीचे उतरने ही नहीं देते। छि:

मनमोहन—(बिना कारण पूछे) अभी उसका अभिमान दूर करता हूँ, चलो।

उसके ही लिये मुझ पर इस प्रकार व्यंग की बौछार और बोली ठोली की भरमार आ रही है। अभी उस दुष्टाको दुर्गति करे देता हूँ। (सब जाते हैं)

पटाक्षेप।

इति प्रथम गर्भाङ्क।

तृतीय अङ्क।

द्वितीय गर्भाङ्क।

स्थान—घरका आँगन।

देवयानी, सुशीला और लक्ष्मी बैठी हैं।

मनमोहनका शीघ्रता से प्रवेश।

(मनमोहन लाल लाल आँखें कर, दौड़ झट बिना कारण पूछे पाछे सुशीला के ऊपर बाज़ सा गिरता है।)

सुशीला—चिहुँक कर, हाय! प्राणनाथ! मैंने क्या अपराध किया?

मनमोहन—तू मेरे घर से निकल जा। अरे दुष्टा, तू मुझे मारेगी। तू अभी निकल चल (एक धक्का देता है) सुशीला लज्जित हो कर आँखों में आँसू भर लेती है।

देवयानी और लक्ष्मी—दौड़ कर मनमोहन को पकड़ लेती हैं। और घुड़क कर "तू पागल होगया"। मनमोहन! तू ख़राब होजा रहा है। तेरी अक्ल मारी गई। तू हमारी निन्दा करावेगा। (पकड़ कर अन्यत्र ले जाती हैं) सुशीलाका रोना सुन कमला आती है।

मनमोहन—(जाते २) अगर रोयी तो मारसे लाल हो जायगी। भला चाहती है तो चुप रह और कही बात कर।

कमला—बहिन सुशीला! रो मत। मनमोहन न जाने क्या

हो जायगा। हमलोगों के दिन ऐसे हो जावेंगे। पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं। ठीक है।

देवयानी—(कमला से) तू चुप रह। अपनी दशा तो सोच ले पराधीन कैसे। पति पत्नीका प्रेम तो परम्परागत है। यह किसी की करनी है। मनमोहन तो जन्मभर किसी से ऐसा नहीं चिढ़ा था। मनमोहन भली भाँति जानता है कि स्त्री दासी नहीं है जो उसे दण्ड दे। उसने मुझसे एक बेर कहा था कि स्त्रियों को जो लोग पराधीन समझते हैं वे दम्पति सुखका अनुभव कदापि नहीं कर सकते। पति पत्नी दोनोंको यह समझ लेना चाहिये कि यह हमारा सुख संयोग, सुख पूर्वक रहने, परोपकार और सन्तानोत्पत्ति कर सच्चरित्र और सम्बुद्ध हो आदर्श स्वरूप से जगत्को मुग्ध करने तथा स्वर्ग-सोपान प्राप्त करने हो का महान् योग है। इसका अनादर करना नरजन्म को निष्फल करना ही नहीं तो और क्या है? तू पराधीन कहके सुशीलाको मत चिढ़ा। तू जा, हट जा (कमला छोटा सा मुँह ले कर चली जाती है)

देवयानी—सुशीला! तू क्यों ऐसी हो रही है? जो कहे सो कर।

सुशीला—मैं क्या करूँ? किसका नाम धाम लूँ? सब मेरा करम ही है। अभी दुःख सहने को है।

लक्ष्मी—मनमोहन अभी तक आज क्यों घर नहीं आया? कुपित हो कर कहीं चल तो नहीं दिया।

सेवक का प्रवेश।

देवयानी—मनमोहन कहाँ है रे?

सेवक—अभी पूजन करते हैं। कुछ थोड़ा स्वच्छ जल मँगवाया है और कहा है कि आज वे भोजन नहीं करेंगे।

देवयानी—(कुछ जल दे कर) मनमोहन को कह कि घरमें बुलाते हैं।

सेवक का नेपथ्य में जाना और पुन: आना।

मनमोहन का प्रवेश।

मनमोहन—क्या है? क्यों बुलाया?

देवयानी—आज तू भोजन क्यों नहीं करता? आ कुछ तो भी खाले।

मनमोहन—न मैं खाता न तुम्हारे घर में रहता, न किसीका मुँह देखता। अब करो जो मन आवे सो करो, किसी को भी मत डरो। हम अब निकल जावेंगे (चला जाता है)

सुशीला का फूट २ कर रोना और कहना—हाय रे करम! किसे दोष दूँ? यह क्या हुआ?

क्या बिगाड़ा हाय! मैंने बुरा किसका है किया?

दैव हा! मुझको वृथा यह दण्ड तूने क्यों दिया?

क्लेश दुखियों को हि देना कहो कबकी नीति है ?
मर चुका था आप उसको मार कर यश क्या लिया ?
तू बड़ा जञ्जालिया है पाप से भरपूर रे !
आँख मूँदे काम करता चला तूने विष पिया ॥
बचूँ कैसे हाय ! इन सब दुष्ट जीवों से अरे !
बात कुछ सूझे न मुझको दोष मैंने क्या किया ?
मारनेको चाहते ये फाँस फन्देमें मुझे,
दुख सदा देते इसीसे सूखती जाती हिया ॥
आता न मुझको कलह छल इर्षा कपट करने अरे !
करम खोटा है हमारा मरम हमने पा लिया ॥
धरम जो कलियुगमें करता करम उसका हा ! फटै ।
पाप जो करते उसीका करम जागे लख लिया ॥
टेढी यहाँकी चाल है सीधा न होना चाहिये,
वृक्ष सीधेही को काटें—किसने तरु टेढा लिया ?
पुण्य जो करते उसे जूते पड़े लाखों लखां ।
झूठका है बोलबाला, सत्य मुँह काला किया ॥
हो व जो होवे न डर कुछ मरण तो एक दिन अहै ।
डिँगूगी पर धर्मसे नहिं विष तो हा ! पीही लिया ॥

देवयानी—सुशीला ! तू रो मत। धीर धर। कलसे तू ने कुछ खाया नहीं है। चल कुछ तो खा ले। चल (हाथ पकड़ कर ले जाती है।)

पटाक्षेप।

इति द्वितीय गर्भाङ्क।

तृतीय अङ्क।

तृतीय गर्भाङ्क।

स्थान—बाहरी बैठकखाना।

मनमोहन, मदन और नरसिंह लेटे हुए हैं।

नरसिंह मनमोहन! तुम क्यों ढोल पीटते हो? जाओ, शीघ्र जाओ।

मनमोहन—मैं कदापि नहीं जाता। इसमें क्या ढोल पीटने की बात। आप तो जाइये।

मदन—मित्र! बात तो ठीक है। किसी को दुःख देना ठीक नहीं। रोष तथा नहीं करना चाहिये। क्षमा का धारण करना शान्ति सुखका कारण है।

(नेपथ्यमें आकाशबाणीका होना)

सुशील को सुधारने में प्रशंसा ही क्या? जो दुःशील को सुधारे वही प्रशंसनीय है। सुशीला को दुःख न दो न दो। वह सच्चरित्र है।

(सब चिहुँक उठते हैं)

मदन—मैंने जो कहा सब ठीक ही हुआ न?

मनमोहन—हाँ, हुआ तो सही, पर अद्यापि मेरा मन नहीं लगता।

मदन—(मनमोहनसे) तुम और नरसिंह अब जाओ। मैं यहीं बैठे २ कुछ अलापता हूँ (दोनो जाते हैं)।

मदन उठकर इधर उधर फिरते यह गाता है:——

कोइ दिन दूध मलाई ताजी, कोइ दिन कन्द मूल फल राजी
कोइ दिन सूखी रोटी भाजी, कोइ दिन बिना अहार [रे मन]१
कोई दिन घाम प्यास हैरानी, कोइ दिन जाड़ा गर्मी पानी।
कोइ दिन सुखद नींद मनमानी, कोइ दिन पड़ती मार [रे मन]२
कोइ दिन प्रेम-पन्थके योगी, कोइ दिन राजा पंडित भोगी,
कोइ दिन कुली व काहिल रोगी, कोइ दिन अपढ़ गंवार ॥३॥
कोइ दिन धोती भद्दी मोटी, कोइ दिन साफा पगड़ी छोटी,
कोइ दिन बल्कल पत्ती खोटी, कोइ दिन नंगे यार रे ॥ ४ ॥
कोइ दिन हाथी घोड़े गाड़ी, कोइ दिन नगर दीप घर खाड़ी,
कोइ दिन सभा गाँव बन झाड़ी, कोइ दिन कारागार रे ॥५॥
जग झंझटका देख बहाना, रोना हँसना खाना गाना,
लोचन ध्यान न इनपर लाना, करना देश सुधार रे ॥ ६ ॥

(सिरपर हाथ फीरता हुआ)

अच्छा अब तो रात बहुत गई। ज़रा लेट तो जावें, भोर हो मनमोहन न आवें। (लेटता है)

नेपथ्यमें मुर्गा बाङ देता है।

ऐरे चोर तम चोड़ तेरे रोर ने तो मेरी नींद को भी मरोर डाला। क्या तुझे अभिच आकर खोरमें शोर करना था।

जान पड़ता है भोर होगया। उधर चकोर और मोर भी नहीं चूके। हाँ अच्छा।

(मनमोहनका प्रवेश)

मदन—अहा हा ! आइये, कहो रात कैसी कटी ?

मनमोहन—मेरा प्रण जो था पूर्ण हुआ हो। मेरा 'प्राण छूट जाय प्रण न जाय' कदापि चूकने का नहीं। माताजी ने सुशीला को खूब समझाया बुझाया पर वह और रोने लगी। अज्ञान और क्रोध वश विरोध कर बैठने से पीछे पछताना होता है। ठीक है। वह आप आप अपनी क्रति पर घृणा और शोक प्रकट करने लगी। अच्छा जाने दो। अब तो हम कांचीपुरी जानेकी इच्छा करते हैं। तुम्हारी क्या राय ?

मदन—अभी जाना उचित नहीं, पर चित्तमें जो बात गठित हो गई उसके हित तुम्हें अनुचित भी करना पड़ेगा। अच्छा जाओ।

मनमोहन—(नेपथ्य की ओर देखके) मा, देवयानी ! मैं काञ्ची पुरी अभी जाने की इच्छा करता हूँ। कपड़े लत्ते ठीक कर दो। रथ भी ठीक है। हम शीघ्र अब चलते ही हैं। अभी कुछ दिन तक नहीं लौटेंगे।

देवयानी—तो सब सेवक आदि ठीक करलो और जाना होतो जल्दी जाओ।

(मनमोहन ससेवक जाता है। मदन भी
नेपथ्य को ओर चला जाता है।)

देवयानी का प्रवेश।

देवयानी—हाय! मनमोहन चलही दिया। बड़ा टेकी है।

सुशीलाका प्रवेश।

सुशीला—क्या सचमुच चले गये?

देवयानी—हाँ, तो क्या मैं झूठ बोलती हूँ?

सुशीला—हाय! मैं बड़ी पापिन हूँ। हाय रे दई! मेरी बुद्धि कहाँ गई? मैंने क्यों बिना विचारे काम किया? बद-नाम चारों धाम में हो गयो। राम, राम, कुछ काम धाम में जी नहीं लगता। न आराम न विश्राम। क्या करूँ, कहा जाऊँ? मनमोहन कब मेरे दुःख मोचन करते हैं? कमला हो ने यह दण्ड मुझे दिया। हायरे फूटा करम! मनमोहन का संग छूटा, हृदय वीणा का तार टूटा। क्या करूँ? मैं मर जाती तो भला था। हाय! हाय! फूट फूट कर रोती है।

कमला का प्रवेश—ले, कहना नहीं माना। अब पछताना पड़ा न। तू रो मत, तुझे जाना है तो तू भी काञ्चीपुरी चली जा। हमारे घर में तू बकद बकद कर रो मत। हमें अच्छा नहीं लगता।

सुशीला—(सुनकर रोती है) मन में। तुझे तो मैं काँटे सी

गड़ती हूँ न? तेरे पाँव पड़ती हूँ। तू मुझे इससे रक्षा कर। यह मेरा प्राण लेगी पर लेगी। कैसी कैसी बातें बोलती है। व्यङ्गकी बौच्छारसे हृदय सूख जाता है। मुख मलिन हो जाता है। भूख भग जाती है। सुख का समाज इधर उधर हो दुःखका राज आ पहुँचता है। कल इसीने मनमोहन को कह दिया कि मैं उन की आज्ञा नहीं मानती। तभी तो इतने निर्दय हो गये। हृदय में करुणा का लेश मात्र भी समावेश नहीं किया। भय हो या समय हो पर इन दोनों में से किसी ने उन को क्रोधित किया है। (रोकर)

अब हाथों से जी है उड़ा हाय जाता!
करूं मैं कहो हाय! क्या अब विधाता?
बिना सोच के हा! वृथा मैं गई क्यों?
डुबा लोक लज्जा दिवानी भई क्यों?
ये क़िस्मत् ने लाई विपत्ती नई क्यों?
कहूं क्या अरे कंठ है सूख जाता
अरे भूतने क्या मुझे है सताया?
मेरी अक़ सब को क्या उसने हि खाया?
लखो रो रो आँखों में है जाल छाया।
अरे प्राण पामर न क्यों छूट जाता?
रहूं हाय! कैसे बिना प्राण-प्यारे।
व है मेरा मन प्रान धन जन सुखारे।

पिता माता भ्राता गुरू ईश सारे ।
विना उनके मुझ को न हा ! कुछ सुहाता ॥
मुझे देते घर में सभी दुःख नाना ।
दिवस रात रो रो के आँसू बहाना ।
न पीना न हँसना न सोना न खाना ।
कहूं क्या ? मुझे हा ! न कुछ रंच भाता !

मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़ती है। देवयानी उसे उठाकर गोद में लेकर कहती है:—

सुशीला ! चेतकर । तू जा स्नान कर ले तो चित्त कुछ स्थिर हो जाय । सुशीला का हाथ धर नेपथ्य के भीतर ले जाना और फिर आना।

कमला—(देवयानी से) यह बड़ी दुष्टा है। खूब छल छिद्र जानती है । तभी तो ऐसा उपाय करती है। इसे खूब गालियाँ देकर घरसे निकाल देना चाहिये ।

देवयानी—तू भी ठीक कहती है। पर मुझे तो यह सच्चरित्र और सती सी जान पड़ती है ।

आकाश वाणी नेपथ्यमें—संगति गुण कदापि नहीं जाता । "कोयल होय न ऊजरी सौ मन साबुन लाय" क्या यह झूठहै ? तुम को इसके लिये खूब सज़ा मिलेगी तब मज़ा आयगा।

(दोनों चिहुँक कर भाग जाती हैं)

[पटाक्षेप]

इति तृतीय गर्भाङ्क

तृतीय अङ्क समाप्त ।

चौथा अङ्क ।

प्रथम गर्भाक ।

स्थान काँचीपुरी ।

(बृहस्पति जाया और सुलोचना बैठी हैं)

ससेवक मनमोहनका प्रवेश ।

बृहस्पति जाया—अहा ! भाग्योदय हुआ । धन्य आज का दिन । हमें सनाथ किया ।

(आकर पथ का वृत्तान्त पूछने व्यजन करती है)

सुलोचना—हाय ! बेटा, तू मुझे अकेली छोड़ कहाँ चल दिया ? मनमोहन आया है तू क्यों नहीं आकर उस से बात-चीत करता ? रोती है । हाय ! ईश्वर !

"हे मेरे प्राण मेरे मन की आशा लाल कहां तोहि टेरूंरे ।
मम अञ्चल-निधि पितु सुखकारी कौन गली तोहि हेरूंरे ॥
अहो पुत्र सुख देन मनोहर कैसे मन को फेरूंरे ।
महा दुक्ख अब परो आन कर कैसे इसे निवेरूंरे ॥
जो मिल जाय अश्विनी नन्दन उनही को जा घेरूंरे ।
'शालिग्राम' जिवाओ मम सुत तुम पर फूल बखेरूंरे ॥

मनमोहन—चुप रहिये । ईश्वर की इच्छा अखण्ड ही होती है । उसपर किसका वश चलता है ?

वृथा मत करो शोक सन्ताप।
कोउ न पति कोऊ नहिं दारा कोउ न सुत कोउ बाप।
कोउ न शत्रु मित्र नहिं कोऊ काको करै विलाप।
इकलोइ आयो इकलोइ जैहै बिना कहे चुपचाप॥
फिर इनमें कहु कौन तुम्हारो जाको पश्चाताप।
नदी नाव संयोग जगत में बिछुरन और मिलाप॥
काल बली मारन को ठाढ़ो लिये हाथ शरचाप।
सब तजि भज हरि हरि निशि वासर सर्वोपरि यह आप॥

(सुलोचना को सान्त्वना देकर चुप कराता है)

सुलोचना—घर में सब अच्छे तो हैं?

मनमोहन—हाँ, सब अच्छे हैं।

सेवक—बाई, भूल तो गया।

सुलोचना—तो जाने दे।

सुलोचना—मनमोहन, तुम बहुत दिनों में आये हो। अभी दो चार दिन रहकर जाना। देरी हो गई अब स्नान करने जाओ।

मनमोहन का स्नान को जाना (नेपथ्य में प्रवेश)

सेवक—मा, मनमोहन घर से कुछ मनोमालिन्य हो कर आये हैं। कारण नहीं जाना गया कि क्या है।

सुलोचना—तो अच्छा तू चुप ही रह। और किसी से न कहना। मुझ से कहा तो कहा।

(मनमोहन का प्रवेश) सेवकका डरके भाग जाना।

सुलोचना—बाबू, स्नान हुआ? अच्छा ले चन्दन तिलक लगा ले और पूजा पाठ यथानुसार कर ले।

(मनमोहनका चन्दन लगाके पूजा करना, फिर ध्यान धर ईश्वरको शीश नवाना)

सुलोचना—बाबू, ले कुछ खा ले। कारण रोटी पकने में कुछ देरी होगी।

मनमोहन—(खाता है)

सुलोचना—बाबू आज तुम अनमने दीख रहे हो। कुछ मनोमालिन्य का कारण नहीं जाना जाता।

मनमोहन—नहीं, कुछ कारण नहीं। मन तो है कभी चैन कभी बेचैन।

सुलोचना—मुझ से क्यों छिपाते हो? सेवक ने सब मुझे कहा है।

मनमोहन—एँ, क्या सब कह दिया?

सुलोचना—कह दिया तो क्या कुछ बुरा किया? कह तो इसका कारण क्या है?

मनमोहन—

हम प्रेम किये हिय छांड़ि दुराव कही सो करी तन प्रान दियो।
बिसराइ के लोक की लाज समाज कपार कलंक को टीको लियो॥
कछु बात न वाहि सुहात अरे मम हेतु औं विष प्याले पियो।
"जिनके हित मैं बदनाम भयो तिन नेक कह्यो नाहि मेरो कियो॥"

सुलोचना—तो क्या हुआ? तुम्हें क्षमा करना चाहिये।

मनमोहन—(रोषके साथ) हम उसका मुँह अब जन्म भर नहीं देखते। चुप रहो।

सुलोचना—उसका मुँह नहीं देखते तो दूसरे की आवश्यकता होगी ही तो? तुमको किसी ने बहका दिया? सुशीला तो वैसी नहीं है।

मनमोहन—कुछ नहीं, कभी नहीं। हमारा प्रण है। 'प्राण जाय प्रण न जाय'

और स्त्रियों से प्रीति छिः!

हो शीघ्र ही कुपित हैं करतीं लड़ाई।
होतीं परन्तु फिर शान्त, करैं भलाई॥
जातीं तुरन्त मिल प्रेम प्रतीत लातीं।
चाटें तुरन्त मुख जो पुचकार पातीं॥
माया प्रपञ्च गठरी नखज्ञान मैले॥
हैं वाक दन्त इनके सुनिये विषैले॥
काटैं सदा विकल हो पति भामिनी हैं।
देखो विचार कुतिया सम कामिनी हैं॥

और भी—

"कामिनी कों ननु मानु, कहिये सघन बन,
वहाँ कोउ जाय सोतो, भूले ही परतु है।

कुञ्जर है गति कटि, केहरी को भय जामें,
वेणी काली नागिनी ऊ फणिकूँ धरतु है ॥
कुच हैं पहार जहाँ काम चोर वसे तहाँ,
साधि के कटाक्षवाण प्राण कूँ हरतु है ।
सुन्दर कहत एक, और डर जामें अति
राक्षसी बदन खाउँ खाउँ ही करतु है ॥"

सुलोचना— हँस कर, नहीं सुना क्या ?

नारी से तू विमुख न होरे नित कर उसका आदर ।
नारी यश फैला है जग में देखो आँख उठाकर ॥
क्या बालक क्या वृद्ध युवा सब उसका ही गुण गाते हैं ।
गाते गाते थक भी जाते तोभी नहीं अघाते हैं ॥
नारी जग की माता है तू उस से रूठ न रे मन !
नेति नेति कह स्त्री-चरित्र को वेदादिक करते गायन ॥

मनमोहन—हम उससे अलग रह सकते हैं। हमें उसकी कुछ आवश्यकता नहीं। हम अब योगी हो जावेंगे।

सुलोचना—योगी होना बड़ा कठिन है। गृहस्थाश्रम के पालन में तो इस प्रकार हार खा रहे हो तो वह तो दुर्गम्य व्यापार है। गृहस्थाश्रम के तुल्य और कोई उत्तम आश्रम नहीं। तुम उसी का धैर्य्य पूर्व्वक पालन करो :-

भ्रात देख चारों आश्रम में है गृहस्थ आश्रम बढ़कर।
वाणप्रस्थ सन्यासी और ब्रह्मचारीका हो कर घर॥
जिस प्रकार नद नाले गिरते अन्त उदधि में जाकर।
सभी आश्रमी पाते हैं विश्राम गृहस्थों के घर॥
भिक्षा ब्रह्मचारियों को औ सन्यासी को दे भोजन।
वाणप्रस्थ लोगोंको देते वही गृहस्थी नित धन॥
इस प्रकार तीनों आश्रम के पोषण का वह पुण्य विमल।
है गृहस्थ का भाग, ज्ञान तू सम्पादन कर इसमें चल॥

फिर देखो योगी जन भी इस प्रकार बिलाप करते हैं :—

योगी जन निज दुख वर्णन कर दृग आँसू भर लाते हैं।
भूख प्यास नित हाय! घाम सह बन बन हम दुख पाते हैं॥
सिंह व्याघ्र शूकर सर्पादिक का है हमको छिन छिन डर।
पर्वत की जल वायु बुरी अति जो सब रोगों का है घर॥
यहाँ न कोई हितू हमारे रोग शोक हरने को।
ईश, बचाओ अन्य जनों को योगी दुख सहने को॥
सुखी गृहस्थी जग में हमने देखा खूब विचारा है।
निर्भय रहते सुत पित माता भ्राता भगनी दारा है॥
रखते सब से प्रेम परस्पर करते हिलमिल के निज काम।
खाते, देते दान दुखी को सुख से लेते प्रभुका नाम॥

मनमोहन—(मनमें) बात तो ठीक है (प्रकट) तो कहो वह वश

में कैसे आवेगी ? वह आज्ञाकारी किस उपाय से हो सकती है ? उसके मद—अज्ञान—का संहार किस प्रकार हो सकता है ? उसे अब मेरे विचार में पढ़ाना चाहिये।

सुलोचना—ऐसा नहीं है कि स्त्रियाँ पढ़ने लिखने से सुधर जायँ। दुःशीला स्त्रियाँ तो पढ़ने से और भी बिगड़ जाती हैं। जब दम्पति कलह से मनोमालिन्य हो गया तो वे क्या क्या नहीं कर बैठतीं ? चिट्ठी पत्री लिख वे दुराचारियोंकी पट्टी में पड़ कुकर्म करने लग जाती हैं। अपने मा बाप तथा कुल की घालक हो कर पति को भी कभी २ मरवा डालती हैं। सुशीला चरित्रवती है। तू उसकी परीक्षा लेकर देख ले। यह तेरा भ्रम मात्र है।

मनमोहन—हाँ, बात तो ठीक है। पर यह मा बाप ही का दोष है। पढ़ा लिखा कर उन्हें इश्क से भरे हुए उपन्यास पढ़ाये जावें तो फिर वह तो फूस के मकान में आग का खेल है। और जहाँ देखो व्यभिचार ही का बाज़ार गरम है। यही लोगोंके गले का हार बना हुआ है। इस असार संसार में इसे ही सार समझ सदा इसी का सत्कार लोग करते हैं। योगी यती भी इसका संहार अच्छे प्रकार से नहीं कर सकते। ऐसी दशा में बड़ी चतुराई से काम करना चाहिये। अपनी

बेटी बहिनों को ऐसे २ उत्तम नाटक और उपन्यास चुन२ कर देने चाहिये कि जिनमें इश्क का गन्ध तक न हो और जिनके पढ़ने से स्वदेश-प्रीति जाग्रत हो।

बृहस्पति जाया का प्रवेश।

बृहस्पति जाया :—

हाँ बात तो बहुत ठीक है। स्त्रियों को माता, पिता, पुरुष और पुत्र किसी की भी ओर से स्वतन्त्रता नहीं मिलनी चाहिये। नहीं तो वे नष्ट भ्रष्ट हो जाती हैं। बाल्य काल में पिता, युवा में पति और वृद्धा में पुत्र उन्हें अपने तन्त्र पर रखें। तुलसी ने भी कहा है—राखिय नारि सदा उरमाहीं, युवती शास्त्र नृपति वश नाहीं।

सुलोचना—सत्य है। वृद्ध लोगों की बात शिक्षाप्रद और और मधुर होती है। (मनमोहन की ओर मुँह फेर कर) आज तुमने बृहस्पति जायाके अभय बाहु की छाया में अत्यन्त सुख पाया। अभी और भी सदोपदेश मिलनेकी संभावना है।

बृहस्पति जाया :—

स्त्रियों को अपने वश में लानेकी जो बात तुमने अभी पूछी सो सुनो। पुरुषोंको चाहिये कि वे स्त्रियों को नज़र से ही डैराया करें। इस प्रकार की दृष्टि से उनकी ओर देखें कि देखते ही उनके हृदय में भयका

उदय हो जाय। बात से मारे, लात से नहीं। नहीं तो वे बेधड़क और निडर हो जाती हैं। धमकी से उन्हें खूबही डराना चाहिये। शिक्षा उनकी रुचिके अनुकूल मधुर बचनों से दिया करें। जब वे कोप करें तो उनसे ऊपरी भाव से चिढ़ जाना चाहिये। दो तीन दिन तक बात चीत ज़रा रूखी तौर से हुई कि वे स्वयं पाँव पड़ने लगती हैं।

मनमोहन (दीर्घ स्वास लेकर) हाँ ठीक है।

यह तीर मनोहर नीर सुहावनो
वीर विना तुम्र नीको न है।
चहुं ओर समीर जनावत पीर
भुजंगम भैर सरीर दहै।
अब गुंजत नाहि मलिन्द के पुंज
निकुंज में मंजुलता न रहै।
जग मोहन हाय परे तन पिंजर
प्रान विहंग उड़ायो चहै॥

सुलोचना—मुसक्या कर—क्या अब सुधि आ गई ?

मनमोहन—नहीं, पर घर जानेकी इच्छा हो रही है। आज्ञा हो तो दुपहर को चला जाऊँ।

सुन्दर प्रसाद का प्रवेश।

सुलोचना—(सुन्दर प्रसादकी ओर उँगली उठाकर) हाँ, उधर

भी घबराते होंगे। अच्छा सुन्दरप्रसाद को संग लेकर अभी चला जा, पर देख सुशीला को कदापि कुछ नहीं कहना। लोग आपस में फूट पड़ाने को इधर उधर की बहुत झूठी बातें भी कह देते हैं। उन्हें न मानना। बहुत लोग तो जलते ही थे। बहुत विचार कर काम करना और वह नाता ही ऐसा है कि ईर्षा स्वभाव से पैदा हो आती है। जब उन्हें कष्ट हो तो वे सुख से रहती हैं। तू तो चतुर है।

मनमोहन—आज्ञा शिरोधार्य्य है।

वृहस्पति जाया की ओर फिर कर—तो मैं अब जाता हूँ।

(दोनों के चरण छूता और जाता है)

इति प्रथम गर्भाङ्क।

चतुर्थ अङ्क।

द्वितीय गर्भाङ्क।

स्थान—विश्राम खण्ड। एक कमरा।

सुशीला बैठी है।

सुशीला—(रोती हुई)

दया सिन्धु प्रभु दीनबन्धु मम लेवहु प्रान बचायरे।
चहुँ दिशि घोर विपति मोहि घेरे। मैं असहाय कोउ नहिं मेरे॥
तुम बिन जग न सहायक कोई गहहु हाथ प्रभु आय रे। १
करुणानिधि कीजै अब दाया। प्रान चहत हा घट सों जाया॥
अन्धकारमय जग दिखरावत महा दुक्ख रह्यो छाय रे। २
गज गुहार इक बार कियो जब। धाय जाय काटो संकट सब॥
द्रुपदि पुकार करत बाढ़्यो पट बान सुदिय बिसराय रे। ३
दुख जर्जर मन देह छीन अति। लोचन दीन मलीन हीन मति॥
बार सहस रोवत गोहरावत, आइ उबारहु धाय रे। ४
करुणानिधि कस नाम तुम्हारे। करुणा लेश न तुम जब धारे॥
सयन छीर सागर मंह करि करि, निठुर भयो का, हाय रे? ५

हाय! भगवन्! क्या किसी का मुझपर श्राप था? पूर्व जन्म में न जाने मैंने क्या २ पाप किये थे। हाय विरह-ताप मुझे तापित किये डालता है। क्या करूँ? कैसे

मरूँ ? मरना भी नहीं आता। दिन भी जल्दी नहीं चला जाता। हाय ! हाय ! प्राणनाथ किधर गये ?

देवयानी—(आती है) सुशीला ! मैंने तुझे बहुत समझाया पर तेरे जी में एक न आया। तुझे रोते रहना ही आया। और न मनमोहन भी अब तक आया कि तुझे चैन पड़े। रैन को न जाने तू क्या करेगी अभी से ही तेरे बैन औरके और होने लगे हैं। हाय !

सुशीला:

"थाकी गति अंगन की मति पर गई मन्द,
सूख झाँझरी सी ह्वै कै देह लागी पियरान।
बावरी सी बुद्धि भई हाँसी कहू छीन लई,
सुख के समाज जित तित लागे दूर जान॥
हरीचन्द रावरे बिरह जग दुखमयो भयो कछु,
और होनहार लागे दिखरान॥
नैन कुम्हिलान लागे बैन हू अथान लागे,
आओ प्राननाथ अब प्रान लागे मुरझान॥"

(फूट फूट कर रोती है)

देवयानी—सुशीला, कह तो क्यों तू ऐसी हुई जाती है ?

सुशीला—कुछ कहा नहीं जाता। हाय ! हाय !

देवयानी—देख तेरी दशा कैसी हो रही है। अभी दो दिन नहीं हुए, मनमोहनके वियोगसे तेरा हाल बेहाल हो रहा है। बाल बिखर कर तेरे रूपको डरावना

बना रहे हैं मानो आषाढ़के काले मेघ आकाशमें मँड़रा रहे हैं। आँखें लाल २ हो चलीं। मुँहसे तो बातें नहीं निकलतीं। आँसूकी धारा तो सावनकी झड़ी है कभी रुकती ही नहीं हैं। आज पतिके अन्यत्र जानेसे नहाने खानेको जी नहीं चाहता। पति बिना विपत्ति ही विपत्ति है।

पति (लज्जा) रखनेवाले पतिही हैं। पतिके बिना मति भी दूसरी हो जाती है।

सुशीला--पेटमें शूलकी सी पीड़ा हुई है। हाय! हाय! पीड़ा असह्य हो गई (भूमिपर गिर पड़ती है) सुधि बुधि नहीं। अचेत हो पड़ी हैं।

कमला—अभी तो रोती थी। खाटमें मजेसे सोये सोये सुख से दिन बिताती थी। काम काज तो करना ही नहीं पड़ता। खानेके समय आ जाती है। बस। पीड़ा शूल कुछ नहीं है। यह सब नखरा है। इससे खूबही काम कराना चाहिये। ये बड़ी निर्लज्ज है।

(सुशीलाको अचेत और बुरी दशामें देखकर) देवयानी—हाय रे दई! यह क्या हुआ? 'दुर्बले दैव घातकः' कोई है तो वैदको दौड़कर बुला ला। जल्दी दौड़ो।

कमला—यह कुछ नहीं है. देखो अच्छी हो जाती है।

वैद्यका प्रवेश—यह विलाप और अत्याधिक रोनेका ताप

है। मूर्छासी आ गई है इन्हें व्यजन करो (कुछ मन्त्र जन्त्र करता है)

(देवयानी सुशीलाको व्यजन करती है)

सुशीला—(सिरको छूते हुए) सिरमें भी बड़ी पीड़ा है। आँखके सामने अँधियारी लखाती है। पेट हृदमदाता सा है। और पीड़ा भी वैसी ही है।

देवयानी—हाय! (दीर्घ स्वास खींचकर) मनमोहनकी भी यही दशा होगी। आज कुछ हो जाता तो मनमोहन पछताता। उसे विचार नहीं है कि सती स्त्रियोंको बिना पतिके क्षणभर भी चैन नहीं पड़ता। अभी उसको बुलानेको आदमी भेज देना चाहिये। बहुत दूर नहीं है। दो तीन घण्टेमें आही जावेगा। तब तक सुशीला भी शान्त हो जावेगी। और कुछ नहीं तो उसके दर्शनसे ऐसा रोना बिलखना तो बन्द हो जायगा ताकि रात सुख पूर्वक कटे। नहीं तो अभी हमें कलङ्कका टीका लग जाता।

कमला—मनमोहनको लेने जानेसे अभी बड़ी हैरानी होगी। रातका समय। वे कैसे और कब आते हैं?

वैद्य—अब तो शरीर अच्छा हो गया, अभी आदमी न जावे। कल बहुत करके मनमोहन भी आवेंगे।

देवयानी—लेने जानेसे मनमोहन शीघ्र आ जावेगा। वह बड़ा करुण-स्वभाव है। किसीका दुःख नहीं देख

सकता। तो कब सम्भव है कि सुशीलाके सुख दुःख का भागी न होकर वह अपनी मानसिक कातरता दिखावे। उसके कानमें यह बात पड़तेही वह दौड़ कर आ जावेगा।

कमला—अभी मनमोहनके आनेकी कुछ आवश्यकता नहीं। सुशीलाहीने तो उसको वहाँ भगा दिया है। अब यह बहाना करती है। इसे मरने दो। मनमोहन तो कदापि नहीं आवेगा। वह तो मुझसे कहके हो गया है कि वह अब सुशीलाका मुँह नहीं देखेगा।

सुशीला—(मनमें) हायरे पापिन्! इस सबका कारण तूही है। मनमोहन तो कदापि तुझसे कुछ बातेंही नहीं करते। भला यह कब सम्भव है कि वह तुझसे सब बातें कहें? अभी मनमोहन आही जाते पर तू रास्तेमें काँटे बिछाती है। ईश्वर तेरा भला करे! ठीक कहा है :—

पर सुख से जरते चुगली करते व्यर्थ कलंक लगावैं।
गावैं चतुराई करैं लड़ाई चुपड़ी बात बनावैं॥
नावैं बहु माथा कहि निज गाथा, अपनो काज सुधारैं।
ईर्षा हिय धारैं, बनत बिगारैं, अन्त काल जी मारैं
नित निन्दा करते, पर धन हरते, दोष सदा दिखलावें
जिनके घर खावैं, उन्हें डुबावैं, उलटे लात लगावैं॥

बिन कारण मारैं अशुभ विचारैं रीति नई सिखलावैं।
दुर्जन जन करनी, जाय न वरनी, लोचन दुख उपजावैं॥

फूट फूटकर रोती है और मूर्च्छित होकर गिर पड़ती है।

पटाक्षेप।

इति द्वितीय गर्भाङ्क।

चतुर्थ अङ्क।

तृतीय गर्भाङ्क।

स्थान—विश्राम प्रासाद।

(नरसिंह, देवयानी, कमला आदि बैठीं हैं)

मनमोहन और सुन्दर प्रसाद का प्रवेश।

प्रणाम शिष्टाचार आदि करते हैं।

नरसिंह—मनमोहन, दो तीन दिन वहाँ कैसे बीते? मज़े में तो रहे?

मनमोहन—मज़ा कैसा? कुछ उदासी रही। सब अच्छे हैं।

नरसिंह—कब चले वहाँ से?

मनमोहन—ठीक दुपहर को।

नरसिंह—(सुन्दरप्रसाद की ओर मुँह फेर कर) कहो आप तो अच्छे रहे? अभी दो तीन दिन तो आप अवश्य रहेंगे?

सुन्दरप्रसाद—जी, हाँ।

नरसिंह—बहुत अच्छा, तो मैं आता हूँ। (उठ कर चला जाता है।)

देवयानी—मनमोहन! तू तो चल दिया और हम यहाँ दुःख भोगती पड़ी रहीं।

मनमोहन—मुसक्या कर चुप हो जाता है।

सुन्दरप्रसाद—बाई देवयानी! सुलोचना ने कुछ सन्देश कह भेजा है।

देवयानी—तो आ, यहाँ न कह, भीतर चलें, सब सन्देस वहीं कहना।

देवयानी और सुन्दरप्रसाद जाते हैं।

(सुशीला का शीघ्रता से प्रवेश)

सुशीला—हाय आज भाग्योदय हुआ, हृदय आनन्द से लहर उठा। प्राणनाथ! इतने दिन में कृपा की (अश्रुप्लावित हो पैर चूमती है)

मनमोहन—उसे शीघ्र उठाकर गोदमें ले लेता है और चुम्बन करता है।

मनमोहन—(सुशीलाको गले लगाकर)प्यारी,तुम्हारी दशा देख जी डर जाता है। क्यों शृङ्गार हार से विहीन हो इस प्रकार मलीन दीख रही हो? कहो तो।

सुशीला :—

सब जग विपति विपति बिन पतिके। (टेक)

पति बिन पति न रहै नारिन की

पति बिन ध्यान न गति के॥

पति बिन हार अहार बार

शृंगारहु हाय! कुमति के॥

बिन पति जग अंधार भार-दुख

सपने सुख सम्पति के॥

लोचन पति बिन दुर्गति चहुँ दिक,

हा ! सुख दान न रति के ॥

मनमोहन—सच है सती और पतिव्रता स्त्रियोंका यह गुण ही है।

"जल को सनेही मीन बिछुरत तजै प्रान ;

मणि बिनु अहि जैसे जीवन न लहिये ।

स्वाति-बुन्द को सनेह प्रगट जगत माहिं ;

एक सीप दूसरो सु, चातक हु कहिये ॥

रवि को सनेही पुनि, कमल सरोवर सों,

शशि को सनेही हूँ चकोर जैसे रहिये ॥

तैसेहि सुन्दर एक, प्रभू सों सनेह जोर ;

और कछु देखी काहु ओर नहिं बहिये ॥"

प्यारी सुशीला ! मैंने दूसरों के बहकाने पर तुझको कितना कष्ट नहीं दिया ? पर हाय ! तुझ से अधिक दुःख मैंने भी पाये। पतिव्रते ! मैं ही दोषी हूँ। तू मुझे क्षमा कर।

सुशीला—प्राणनाथ, यह आप क्या कह रहे हैं ? दोषी, हाय ! कैसे ? यह तो प्रेम की और हमारे दोनोंके प्रण की परीक्षा थी। इससे यही शिक्षा मिली कि प्रेम अमर है। वियोग से दिन २ बढ़ता है। प्रेम का नाश कदापि नहीं होता। नाश करने का उद्योग

करने से नये नये अङ्कुर अङ्कुरित होकर प्रेम पेड़ को प्रकाण्ड बना देते हैं कि वह दृढ़तम हो जाता है। प्रेम का अभाव होना सुख का ही अभाव है। प्रेम ही भक्ति का मार्ग है। प्रेम बिना जीवन निष्फल है। जिस प्रकार लुहार की खाल बिना प्रान के श्वास लेती है वैसेही प्रेम रहित पुरुष इस संसार में असार और नीरस हैं—प्रेम २ सब कहते हैं पर प्रेम क्या है? "आठ पहर भी ना रहे प्रेम कहावे सोय" और भी

प्रेम न बारी ऊपजे, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजाहि जो रुचे, शीस देइ लै जाय॥

(आकाशवाणी नैपथ्यमें)

धन्य सुशीला! धन्य मनमोहन! धन्य तुम्हारा प्रेम! और मनोदमन। हम सब देव ईश्वर से प्रेरित होकर तुम्हारे पास आये हैं। ईश्वर तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हैं। मन माने बरदान माँगलो (माँगलो, माँगलो।)

मनमोहन और सुशीला :—

दाया कर ईश! याहि दीजे बरदान †।

देवगण—कहैं माँगु, माँगु।

मनमोहन—सच्चरित्र होवैं सब भारत सन्तान॥

† पं० बद्रीनारायण चौधरी (प्रेमघन) के "ऊग्यो सुख चन्द भरा हम [illegible] स्वच्छन्द कहो वाह वाह" का अनुकरण। लेखक

देवगण—कहैं माँगु माँगु ।
मनमोहन—सद् गृहस्थ होवैं सब पावैं सुख-मान ॥
देवगण—कहैं माँगु माँगु ।
मनमोहन—सेवैं गुरु देव, करैं दीनन को दान ॥
देवगण—कहैं माँगु माँगु ।
मनमोहन—भोगैं सुख साज धरैं भारत को ध्यान ॥
देवगण—कहैं माँगु, माँगु ।
मनमोहन—मोह नींद छांड़ि, कर्म साधैं सविधान ॥
देवगण—कहैं माँगु माँगु ।
मनमोहन—घर घर सब लोग करैं देशी व्यवहार ॥
देवगण—कहैं माँगु माँगु ।
मनमोहन—हिल मिलके रहैं त्यागि क्रोध अहङ्कार ॥
देवगण—कहैं माँगु माँगु ।
मनमोहन—घर घर हो सुमति नसे भाइन की फूट ॥
देवगण—कहैं माँगु माँगु ।
मनमोहन—भागि दरिद्र होय सम्पति सुख जूट ॥
देवगण—कहैं माँगु माँगु ।
मनमोहन—आलस सब त्यागि, करैं उन्नत विज्ञान ॥
देवगण—कहैं माँगु माँगु ।
मनमोहन—कौशल व्यापार कला कृषि में दै ध्यान ॥
देवगण—कहैं माँगु माँगु ।
मनमोहन—जावैं परदेश सीख विद्या घर आँय ॥

देवगण—कहैं माँगु माँगु।

मनमोहन—सेवैं निज देश, शेष जीवन विताय॥

देवगण—कहैं माँगु माँगु।

मनमोहन—बाढ़े नित प्रेम पिता पुत्रन के बीच॥

देवगण—कहैं माँगु माँगु।

मनमोहन—दम्पति सुख-भोग करैं औगुन तजि नीच॥

देवगण—कहैं माँगु माँगु।

मनमोहन—नारिन को शिक्षा दें भारत के लोग॥

देवगण—कहैं माँगु माँगु।

मनमोहन—शिक्षित सन्तान करैं बाढ़े सुख भोग॥

देवगण—कहैं माँगु माँगु।

मनमोहन—रहैं सभी पुरुष नित्य पत्नीव्रत माँहि॥

देवगण—कहैं माँगु माँगु।

मनमोहन—पातिव्रत धर्म तजैं नारिनहूँ नाहिं॥

आकाश वाणी नेपथ्य में।

(एवमस्तु, एवमस्तु)

मनमोहन और सुशीलाके ऊपर फूलोंकी दृष्टि करती हुई दो सखियाँ गाती हैं:—

दीजिय किहि विधि प्रेम-बधाई।

प्रेम-नेम पूरित भवसागर आगर गुण सुखदाई॥

नतु नीरस संसार भार-मय पग पग अति दुखदाई॥

अजय अनादि प्रेम इकलोई चेतन जडन सुहाई ॥
प्रेम स्वाद कछु वरनि न जावै मीठो मानु मलाई ॥
करत प्रेम विन मान न स्वान हुँ यदपि मूढ़ पशु भाई ॥
प्रेमहि के वश रसमय ह्वै जग शुक सारिका पढ़ाई ॥
परमेश्वर हूँ प्राप्य प्रेम सों पूरन प्रीति दृढ़ाई ॥
लोचन तन्मय हृदय अभय जे पिये प्रेम-प्रभुताई ॥

पटाक्षेप।

इति तृतीय गर्भाङ्क ।

चतुर्थ अङ्क समाप्त।